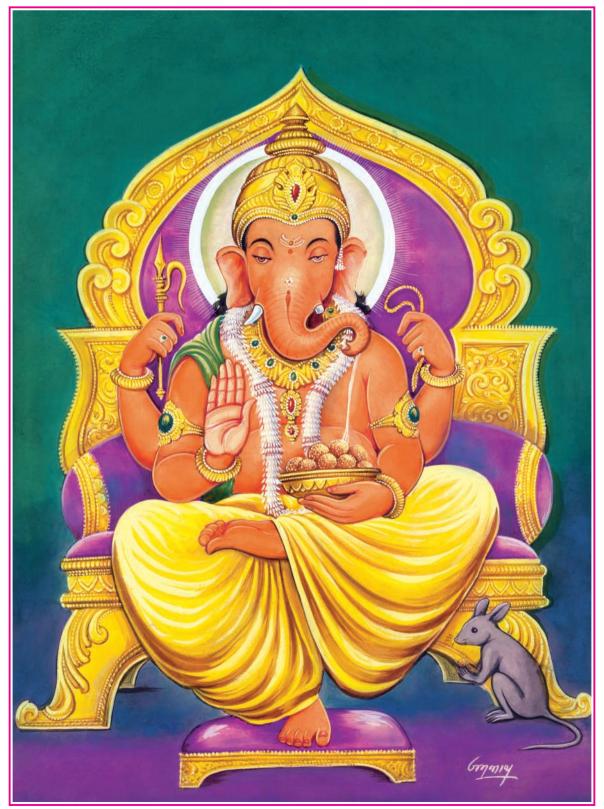
कल्याण



गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान





भगवान् गणेश

```
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय
वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्थेकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥
```

पूर्णमेवावशिष्यते॥

वर्ष गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, सितम्बर २०१८ ई० पूर्ण संख्या ११०२ गणपति-स्तवन

यः

विश्वात्मने

तस्मै

सर्वविघ्नं

नमो

त्रैलोक्यसंहारकृते

हरते

जनानाम्।

नमस्ते ॥

विघ्नविनाशनाय॥

विश्वविधानदक्ष।

तं

देव

जगन्मयाय

द्विरदाननं

ब्रह्ममयाय बीजाय

धर्मार्थकामांस्तनुतेऽखिलानां

कुपानिधे

विश्वस्य

त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय। नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम्॥ में उन भगवान् गजानन गणेशजीको प्रणाम करता हूँ, जो लोगोंके सम्पूर्ण विघ्नोंका हरण करते हैं। जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामकी उपलब्धि कराते हैं, उन विघ्नविनाशकको नमस्कार है। हे कृपानिधान! हे विश्वका विधान करनेमें दक्ष! आप ब्रह्ममय, विश्वात्मा, विश्वके बीजरूप, जगन्मय, त्रैलोक्यका संहार करनेवाले

हैं; हे देव! आपको नमस्कार है। वेदत्रयीस्वरूप, अखिल बुद्धिदाता, बुद्धिप्रदीप, सुरेश्वर, नित्य, सत्य, नित्यबुद्ध, नित्य निष्काम आपको नित्य नमस्कार है।[गणेशपुराण]

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, सितम्बर २०१८ ई०		
विषय-	-सूची	
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१ - गणपित-स्तवन	१४- आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-स् (पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री) १५- सभीका ईश्वर एक [प्रेरक-प्रसंग] १६- संत-संस्मरण (मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी म ऋषिकेशमें हुए सत्संगसे) १७- गोपियोंके स्वर [कविता] (श्रीमती करुणा मिश्रा)	
१२- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे) २३ १३- सात दिनका मेहमान [कहानी] (पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार') २४ ————————————————————————————————————		<i>१७</i>
१– गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान(रंग	•	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् गणेश (🤈		_
३- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान(इक ४- बाण बनानेवालेकी एकाग्रता(,	रंगा)	
एकवर्षीय शल्क जय जय विश्वरूप हरि जय		पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०
संस्थापक— ब्रह्मलीन परम श्रद्धे आदिसम्पादक— नित्यलीलालीन १ सम्पादक— राधेश्याम खेमका, सहस् केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के	द्रेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़	था प्रकाशित
website: gitapress.org e-mail: kalya	an@gitapress.org 0923	5400242/244

संख्या ९] कल्याण

याद रखो—सच्ची शरणागति भगवानुके प्रति मिलकर घुल-मिल जाता है, तब वह नित्य शान्तिमय

याद रखो — जिसने भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह भगवान्के कार्यका आधार बन जाता है। उसके द्वारा फिर जो कुछ भी क्रिया होती है, सब भगवानुकी ही होती है; उसका अपना अपने लिये पृथक् कुछ रहता ही नहीं। याद रखों—जिसने भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण

पूर्ण आत्मसमर्पण हो जानेपर ही सिद्ध होती है,

और सच्चा आत्मसमर्पण वह है, जिसमें अपने पास

अपना कुछ रहे ही नहीं; शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार,

चेतना सभी कुछ श्रीभगवानुके हो जायँ।

भाँति भगवान्का कार्य करता रहता है। वह किसी भी स्थितिमें प्रतिकृलताका अनुभव नहीं करता। उसकी प्रतिकूलता-अनुकूलता भगवानुकी मंगलमयी इच्छामें मिलकर नित्य सम उल्लासमयी स्थितिके रूपमें परिणत हो जाती है। याद रखों—जिसने भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण

कर दिया है, वह इस जगत्को दूसरे लोगोंकी भाँति जड, अनित्य और दु:खपूर्ण नहीं देखता, उसकी आँखें बदल जाती हैं और वह इस चराचरात्मक समस्त जगतुको प्रतिक्षण शाश्वत चिदानन्दमय श्रीभगवानुके रूपमें देखता है एवं इसके प्रत्येक

परिर्वतन और सृजन-संहारमें वह भगवानुकी दिव्यलीलाका अनुभव करके आनन्दमग्न रहता है। याद रखो-जिसने भगवानुके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह नित्य परम शान्तिको प्राप्त करता है। अशान्ति या चित्तकी चंचलता तभीतक रहती

है, जबतक चित्तमें जन्म-मृत्यु—जगत्के अनन्त अनित्य

दृश्य भरे रहते हैं, और जब चित्त भगवान्के चित्तमें

नहीं मिटती, पर वही जब अनन्त अथाह गहराईमें जाकर भगवान्को पा जाता है, तब सर्वथा शान्त स्थितिमें पहुँच जाता है। याद रखों—जिसने भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है-आनन्दका दिव्य और अट्ट भण्डार बन जाता है। उसके द्वारा नित्य आनन्दका स्रोत कर दिया है, वह सदा सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक यन्त्रकी बहता रहता है और वह जगत्के अनेकानेक त्रितापतप्त प्राणियोंको दिव्य शान्तिमयी आनन्दसुधाधारामें बहाकर

उनके तापको सदाके लिये मिटा देता है।

याद रखो — जिसने भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण

कर दिया है-वह यदि कुछ भी नहीं करता, तब भी उसका जगतुमे अस्तित्वमात्र ही जगतुके कल्याणमें

बहुत बड़ा सहायक बनता है। और जो महापातकी

भगवानुका निवासस्थल बन जाता है। सागरके ऊपर-

ऊपर ही तरंगें उछलती हैं, उसका गम्भीर अन्तस्तल

अत्यन्त शान्त होता है, इसी प्रकार चित्त जबतक

बाहरी जगतुमें रमता है, तबतक उसकी चंचलता

लोग भी उसके सम्पर्कमें आ जाते हैं, उनका भी जीवन पलट जाता है। वे घोर नरकसे निकलकर दिव्य भगवद्धाममें पहुँच जाते हैं। और वे भी तरण-तारण बन जाते हैं। याद रखो — जिसने भगवानुके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है-उसके लिये भगवान्का दिव्य धाम उतर आता है, वह नित्य भगवद्धाममें ही सोता-जागता, चलता-फिरता, खाता-पीता और सारी क्रियाएँ

करता है। वह कभी भगवान्से अलग नहीं होता और भगवान् कभी उससे अलग नहीं होते। उसके भीतर-बाहर सर्वत्र सदा भगवान् ही भरे रहते हैं।

'शिव'

हैं, उनमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें



श्राद्धकर्ताका भी परम कल्याण होता है। यहाँ आदिदेव भगवान् गदाधर व्यक्त और अव्यक्त रूपका आश्रय ले पितरोंकी मुक्तिके लिये विष्णुपद आदिके रूपमें विद्यमान हैं। वहाँ जो दिव्य विष्णुपद है, वह दर्शनमात्रसे पापका नाश करनेवाला है। स्पर्श और पूजन करनेपर वह पितरोंको मोक्ष देनेवाला है। विष्णुपदमें पिण्डदानपूर्वक

अक्षयतृप्तिकारक तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है, इससे

श्राद्ध करके मनुष्य अपनी सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोक पहुँचा देता है। रुद्रपद अथवा शुभ ब्रह्मपदमें श्राद्ध करके पुरुष अपने ही साथ अपनी सौ पीढ़ियोंको शिवधाममें पहुँचा देता है। दक्षिणाग्निपदमें श्राद्ध करनेवाला वाजपेय-यज्ञका और गार्हपत्यपदमें

और इन्द्रपदमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको

करना श्राद्धकर्ताके लिये भी श्रेयस्कर होता है। नारदपुराणमें आया है कि भगवान् श्रीराम जब पितृतीर्थ गयाजीके रुद्रपदमें आकर पिता आदिको पिण्डदान करने लगे तो उसी समय पिता दशरथ स्वर्गसे हाथ फैलाये हुए वहाँ आये, किंतु श्रीरामजीने उनके हाथमें पिण्ड नहीं दिया। शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन न हो जाय, इसलिये

पहुँचा देता है। उन सबमें काश्यपपद श्रेष्ठ है। विष्णुपद, रुद्रपद तथा ब्रह्मपदको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आरम्भ और समाप्तिके दिनमें इनमेंसे किसी एक पदपर श्राद्ध

कहा—'पुत्र! तुमने मुझे तार दिया। रुद्रपदपर पिण्ड देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोक जाओगे। तुम्हारे साथ

अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोडेतक वैकुण्ठधाम जायँगे।' श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ उत्तम

रुद्रलोकको चले गये और श्रीरामजीने भी पिण्डदानकी

प्रक्रिया पूर्णकर परम संतोष प्राप्त किया।

उन्होंने रुद्रपदपर ही उस पिण्डको रखा। तब दशरथजीने

इसी प्रकार पूर्वकालमें भीष्मजीने विष्णुपदपर श्राद्ध करते समय अपने पितरोंका आवाहन करके विधिपूर्वक श्राद्ध किया और जब वे पिण्डदानके लिये उद्यत हुए, उस समय गयाशिरमें उनके पिता शन्तनुके दोनों हाथ सामने निकल आये, परंतु भीष्मजीने भूमिपर ही पिण्ड

दिया; क्योंकि शास्त्रमें हाथपर पिण्ड देनेका अधिकार

श्राद्ध करनेवाला राजसूय-यज्ञका फल पाता है। चन्द्रपदमें नहीं दिया गया है। भीष्मके इस व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर श्राद्ध करके अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। सत्यपदमें शन्तनु बोले—'बेटा! तुम शास्त्रीय सिद्धान्तपर दृढ्तापूर्वक श्राद्ध करनेसे ज्योतिष्टोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। डटे हुए हो, अतः त्रिकालदर्शी होओ और अन्तमें तुम्हें आवसथ्यपदमें श्राद्ध करनेवाला चन्द्रलोकको जाता है भगवान् विष्णुकी प्राप्ति हो; साथ ही जब तुम्हारी इच्छा

इन्द्रलोक पहुँचा देता है। दूसरे-दूसरे देवताओंके जो पद् मुक्त हो गये। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

हो, तभी मृत्यु तुम्हारा स्पर्श करे।' ऐसा कहकर शन्तनु

पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा संख्या ९] पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) यद्यपि पाप-पुण्यका विषय बहुत गम्भीर है तथा किये हुए निश्चयके अनुसार ही कर्तव्य-अकर्तव्यकी इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है, तथापि संक्षेपमें, साररूपसे व्यवस्था करनी पड़ती है। यही कहा जा सकता है कि 'मानव-कर्तव्य ही पुण्य अब यह बात बुद्धिसे सोचनी चाहिये कि मनुष्यके लिये वस्तृत: कर्तव्य और अकर्तव्य क्या हो सकता है? या सुकृत है और अकर्तव्य ही पाप या दुष्कृत है।' पुण्य-पाप अथवा कर्तव्य-अकर्तव्यके निर्णयमें इस प्रकारसे सोचनेकी बुद्धि मनुष्यमें ही है, पशु-पक्षी शास्त्र (धर्मग्रन्थ) ही प्रमाण हैं, इसीलिये गीता आदि अन्यान्य जीवोंमें नहीं। इसलिये यह बात मनुष्यपर (१६।२४)-में श्रीभगवान्ने अर्जुनसे कहा कि-ही लागू होती है। जो मनुष्यका शरीर प्राप्त करके तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्य करता है, वह मनुष्यत्वसे गिर जाता है; वास्तवमें ऐसा मनुष्य ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तमिहाईसि॥ मानवशरीरमें भी पशुके ही तुल्य है। 'अतएव तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तुझे संसारमें दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं—(१) शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्म ही करना चाहिये।' चेतन और (२) जड। जो द्रष्टा है, वह चेतन है और परंतु जिस मनुष्यका ईश्वर और शास्त्रमें विश्वास नहीं जो दृश्य है, वह जड है। द्रष्टा भोक्ता है, दृश्य भोज्य है, शास्त्रकी व्यवस्था न माननेपर भी उसके लिये भी है। द्रष्टाके ही लिये दृश्य है। त्याग-बुद्धिसे ज्ञानपूर्वक मानव-कर्तव्य ही पुण्य है और अकर्तव्य ही पाप है। दृश्यका उपभोग करनेमें मुक्ति है अर्थात् इस चेतनका अब यह प्रश्न आता है कि शास्त्रको न माननेवाला दु:ख और पापोंसे मुक्त होकर परम आनन्द तथा परम मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय किस प्रकार शान्तिमें निवास है। बिना समझके उपभोगसे बन्धन, करे ? इसका उत्तर यह है कि उसे प्राचीन और वर्तमान पतन, अशान्ति और दु:ख है। अतएव जो कर्म अपने या किसी भी अन्य चेतन महापुरुषोंके किये हुए निर्णय और आचरणको प्रमाण मानकर अपने कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना चाहिये। जीवके लिये इस लोक और परलोकमें वस्तुत: लाभजनक इसपर यदि कहा जाय कि किसीकी दृष्टिमें कोई है, वहीं कर्तव्य है और जिससे अपना या अन्य किसी जीवका महापुरुष हैं और किसीकी दृष्टिमें कोई और उन इहलोक और परलोकमें अहित होता है, वही अकर्तव्य महापुरुषोंमें भी मतभेद है, ऐसी स्थितिमें वह क्या करे? है। इसी कर्तव्य-अकर्तव्यको विधेय-निषेध्य, शुभ-अशुभ, तो इसका उत्तर यह है कि जिसकी दृष्टिमें जो महापुरुष कार्य-अकार्य या पुण्य-पाप कहा जा सकता है। हैं, उसको उन्हींका आचरण और निर्णय मानना चाहिये। इसी प्रकार इस लोक और परलोकमें प्राप्त इसपर यदि यह कहा जाय कि तब तो माननेवालेकी होनेवाले सुखके साधनरूप जो जड़ पदार्थ हैं, उनकी भी वृद्धिका यत्न करना पुण्य और क्षयका प्रयत्न पाप है। बुद्धि ही प्रधान रही, सो ठीक ही है; जो धर्मशास्त्र और ईश्वरको नहीं मानते, उन्हें तो अपनी ही बुद्धिपर निर्भर यही पुण्य-पापका संक्षिप्त विवेचन है। रहना पड़ेगा। अपनी बुद्धिके निर्णय में भूल हो सकती किसी प्रकारसे किसीको दु:ख पहुँचाना ही पाप है, इसीलिये महापुरुषोंने शास्त्रप्रमाण माननेके लिये कहा है। अपने शरीरका उदाहरण सामने रखकर इसपर है। शास्त्रको प्रमाण न माननेवालोंको किसी महापुरुषके विचार करना चाहिये। विवेकशील मनुष्य दूसरोंके प्रति वचन प्रमाणरूप मानने पड़ेंगे और यदि किसी महापुरुषपर ऐसा कभी कुछ नहीं करता, जिसे वह अपने लिये भी विश्वास न हो तो उन्हें अपनी बुद्धिका ही आश्रय अवांछनीय समझता हो। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है ग्रहण करना पड़ेगा। अतएव ऐसे पुरुषोंको अपनी बुद्धिसे कि चोट लगनेपर या मारनेपर जैसी पीडा हमलोगोंको

भाग ९२ होती है, वैसी ही पशु-पिक्षयोंको होती है। मारनेके कर्तव्याकर्तव्यकी बुद्धि नहीं है, इसलिये हम कह सकते हैं समय उनके रुदन, विलाप और छुडानेकी चेष्टासे यह कि उनके लिये यह पाप नहीं होता; परंतु मनुष्यको तो यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। फिर अपने शरीर-पोषणके लिये या बुद्धि प्राप्त है; अतएव वह यदि दूसरे जीवोंको मारकर या स्वादके लिये दूसरे जीवोंको जानसे मार डालना तो उन्हें मरवाकर मांसाहार करता है तो वह पशुसे भी गया-गुजरा है। पशु-पक्षी ही नहीं, अपितु गम्भीर विचार करनेपर किसी प्रकार भी मनुष्यत्व नहीं कहला सकता! पश्-पक्षी आदिको मारकर उनका मांसाहार करनेमें ज्ञात होगा कि सजीव हरे वृक्ष और व्रीहि आदिके छेदनमें भी उनका या अपना किसी प्रकार हित भी नहीं है; वे तो प्रत्यक्ष किसी अंशमें हिंसा है, परंतु संसारमें कोई भी आरम्भ पीड़ित होते और मरते ही हैं, परंतु मांसाहारीकी भी बड़ी (कार्य) निर्दोष नहीं होता और मनुष्यको अपने जीवन-क्षति होती है। मांसाहारसे मनुष्यका स्वभाव क्रूर और निर्वाहके लिये इनका उपयोग करना ही पड़ता है। मनुष्यकी तामसी हो जाता है। दया उसके हृदयसे चली जाती है। वह आकृतिसे भी पता लगता है कि यह फल, व्रीहि इत्यादि ही जिनका मांस खाता है, उन जीवोंके रोग और दृष्ट स्वभावके उसका खाद्य है; तथापि जहाँतक हो सके इनका उपयोग भी परमाणुके भीतर आ जानेसे नाना प्रकारकी शारीरिक और आवश्यकतानुसार कम-से-कम ही करना चाहिये। मानसिक व्याधियाँ हो जाती हैं; पाप तो होता ही है। अनावश्यक फल-मूल-वृक्षादिका छेदन कदापि नहीं करना मनुष्यके मुखकी आकृति और उसके दाँतों तथा दाढोंको चाहिये। फिर वृक्षोंका तो उनकी उन्नति या वृद्धिके लिये भी देखनेसे इस बातका भी प्रत्यक्ष पता लगता है कि मांस छेदन किया जा सकता है; कलम करनेसे पेड़ बढ़ते हैं, फलोंसे बीज होते हैं और उन बीजोंसे पुन: वृक्षोंकी वृद्धि मनुष्यका आहार भी नहीं है। जो जिसका आहार नहीं है, वह उसके लिये अखाद्य और स्वास्थ्यनाशक है। दुर्गन्धके होती है; परंतु मांसाहारमें तो केवल क्षय-ही-क्षय है, कारण भी मांस अखाद्य है, फिर यह ऐसा आवश्यक भी अतएव मांसाहार सर्वथा पाप और त्याज्य है। नहीं है कि इसके बिना जीवन न चले। इसके अतिरिक्त संसारमें जितने जड पदार्थ हैं, वे सभी किसी-न-अधिकार भी नहीं है। किसी भी जीवको सहायता देने, किसी रूपमें चेतनोंके लिये ही हैं, परंतु उनको भी व्यर्थ बढाने और उसके जीवन-धारणमें सहायक होनेका ही नुकसान पहुँचाना पाप है, फिर चेतन प्राणियोंका शरीरवियोग करना पाप है, इसमें तो कहना ही क्या है? अधिकार है, मारनेका नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि ईश्वरने मनुष्यको सम्पूर्ण चराचरके रक्षणके लिये उत्पन्न किया है, जिस मनुष्यका जन्म और पालन-पोषण मांसाहारी भक्षणके लिये नहीं; यह बात इसकी विद्या, बुद्धि, आकृति कुल और वातावरणमें हुआ है तथा लड़कपनसे जिसका और योग्यतासे भी सिद्ध होती है। यह भी विचार करना वैसा स्वभाव है, उसके लिये भी मांसाहार सर्वथा त्याज्य चाहिये कि मांसाहारीको मांसाहारसे क्षणिक सुख मिलता है। मनुष्यको विवेकको बडी सम्पत्ति प्राप्त है, जब उसको यह समझ आ जाय कि दूसरोंके द्वारा पीड़ा है और थोड़े-से कालके लिये उसका निर्वाह होता है, परंतु उस प्राणीका तो सदाके लिये सर्वनाश ही हो जाता है! इन पहुँचानेपर या मारनेपर मुझे दु:ख होता है, तभीसे उसको सब बातोंपर विचार करनेसे कोई भी समझदार मनुष्य यह सोचना चाहिये कि जैसा दु:ख मुझको होता है, मांसाहारको न तो पुण्य बतला सकता है और न यही कह ऐसा ही दूसरे प्राणियोंको भी होता है और दूसरे सकता है कि यह पाप नहीं है। यह तो एक प्रकारका प्राणियोंके मरने-मारनेके समय होनेवाले भयंकर कष्टको अत्याचार है। पशु-पक्षियोंमें हम देखते हैं कि बलवान् मांसाहारी देखता-सुनता भी है। ऐसी दशामें मनुष्य पशु-पक्षी निर्बल जीवोंको मारते हैं। मनुष्य बुद्धिमान् होनेके होनेके कारण उसके लिये मांसाहार करना पाप ही है कारण सबसे बलवान् है, अत: वह यदि अपने छल, बल और उसे मांसाहारको पाप समझकर तुरंत ही त्याग देना और कौशलसे निरीह, निर्बल, मूक पशुओंको मारता है तो चाहिये। मांसाहार मनुष्यके लिये अत्यन्त जघन्य कर्म यह उसका मानवदेहमें ही पशुपन है। पशुमें तो है। मांसाहार कभी नहीं करना चाहिये।

संख्या ९] जा दिन मन पंछी उडि जैहैं! जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) बात है इसी नागपंचमीकी। लाखका घर पलभरमें खाक हो जाता है। बने-दोपहरको भोजन करके लेटा ही था कि कमरेमें बनाये महल आनन-फानन जमीनमें लोटने लगते हैं। धम्मसे आवाज हुई। देखा, ऊपर दीवालके मुक्केसे रूप-राशि, धन और यौवन, पद और सम्मान—सब कुछ देखते-देखते स्वाहा हो जाता है। पर वाह रे, कारीगर! बिल्ली कूदी। और यह क्या? धन्य है तेरी कला! तेरा चक्कर अद्भृत है। आदमी इसी उसके मुँहमें दबा था एक कबूतर! गोरखधन्धेमें फँसा इसी मायाजालमें डूबता-उतराता कुछ देर पहले कबूतरोंकी इधर-से-उधर भाग-रहता है। दौड मैंने देखी थी। सोचा था कि वे आपसमें विनोद कर हम जाने थे खायेंगे, बहुत जमीं बहु माल। रहे हैं। मुझे क्या पता था कि मौतको सिरपर मँडराते ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकड़ ले गया काल॥ देखकर वे जीवनके लिये दौड़ादौड़ी मचाये हुए हैं। कालदेव आते हैं और पलभरमें हमारी मुश्कें बिल्लीके पीछे दौड़ा कि वह कबूतरको छोड़ दे, पर वह बाँधकर चल देते हैं। न उनके आनेकी घडी निश्चित, न उनके आनेका बहाना निश्चित। भला क्यों छोड़ने लगी? वह छतपर भागी। इधर-उधर खूनके धब्बे पड़े थे, कभी रोग है तो कभी बीमारी। कभी आग है तो कभी तूफान। कभी महामारी है तो कभी और कुछ। रास्तेमें । ऊपरकी भण्डरियामें कबूतरको पंख फड़फड़ाते कभी साँपके रूपमें वे काट खाते हैं तो कभी सिंहके सुनकर बिल्लीको ललकारा तो वह उसे छोड़कर नीचे रूपमें फाड़ खाते हैं। भागी। कालदेवको न रहम है, न दया। घड़ीकी सुई ठिकानेपर पहुँची नहीं कि बस, उन्होंने अपना फन्दा जाकर देखा तो बेचारा कबूतर शान्त हो चुका था! बाबा कबीरदास मानो कानमें आकर गुनगुनाने लगे— कसा। रहिये आप बड़े बहादुर, रहिये आप बड़े शूरवीर, रहिये आप लखपती-करोड़पती—उनके आगे आपकी मीचु बिलइया खैहे रे। दाल नहीं गल सकती। डॉक्टर और वैद्य, हकीम और ऐशो इह संसार पेखना, रहन न कोऊ पइहै रे। तबीब, सुइयाँ और गोलियाँ—सब बेकार रहती हैं, सूधे सूधे रेंग चलहु तुम नतरु कुधका दिवइहै रे॥ बिलकुल बेकार। तभी तो-बारे बूढ़े तरुने भइआ सभहू जम लै जइहै रे। मानुस बपुरा मूसा कीनो, मीचु बिलइया खैहे रे॥ आस पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल। धनवंता अरु निरधन मनई ताकी कछू न कानी रे। मंझ महलसे ले चला ऐसा काल कराल॥ भूलोकका सर्वोच्च अधिकारी है—यमराज। उसके राजा परजा सभ करि मारै ऐसो कालु बडानी रे॥ आगे किसीकी दाल नहीं गल पाती! जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु! संसारमें और सब अनिश्चित है, निश्चित है केवल सोचनेकी बात है कि कैसा होता है वह दिन— एक मृत्यु। कहावत भी है कि 'इट इज ऐज श्योर ऐज डेथ।' जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं। 'मृत्युकी भाँति निश्चित।' ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं। रूप राशि पर गर्व न करना ओ फूलों की रानी। घर के कहैं बेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं॥ समय रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी॥ जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं।

भाई और बन्धु, हित् और मित्र, हाथ-पर-हाथ धरे अहन्यहिन भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। रह जाते हैं, कोई दवा काम नहीं करती। शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥ माथा पकरि के माता रोवे भुजा पकरि के भाई। (युधिष्ठिर—महाभारत ३।३१३।११६) 'दूसरे लोग रोज मरते जाते हैं, पर हम तो कभी लपट झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥ मरेंगे ही नहीं—ऐसा हम मान बैठे हैं!' कूचके नक्कारे और फिर— बज रहे हैं। विश्वकी धर्मशालामें आनेवाले-जानेवाले हाड़ जलै ज्यों लाह कड़ी को, केस जरै ज्यों घासा। यात्रियोंकी रेलपेल मची है, पर हमें अपनी कोई परवाह सोने जैसी काया जिर गइ कोऊ न आयो पासा॥ सब कुछ, सारी धन-दौलत, सारी जर-जमीन, सारे ही नहीं। सगे-सम्बन्धी, यहीं छूट जाते हैं। श्मशान-मार्गमें कोई अजब सरा है ये दुनिया कि जिसमें सहरो शाम, साथ नहीं देता। किसी का कूच, किसी का मुकाम होता है! कोई आ रहा है, कोई जा रहा है। सब ठाठ पड़ा रह जायगा जब लादि चलेगा बनजारा। किसीके स्वागतकी शहनाई बज रही है, किसीकी बिदाईका मर्सिया पढ़ा जा रहा है। राम जब निकसन लागे प्राण रोज आठ पहर, चौंसठ घड़ी यह तमाशा चल रहा उलटि गयीं तब दोनों पुतरियाँ। है। हम सबका स्वागत करते हैं, सबको विदाई देते हैं, भीतर बाहर जब लाये पर यह नहीं सोचते कि अपना नम्बर भी आनेवाला है। छूटि गयीं सब महल अटरियाँ। हमें भी कोई पुकारकर कहता है-कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो संग चली वह सूखी लकरियाँ॥ कदम सूए मरकद, नजर सूए दुनिया, केवल थोड़ी-सी सूखी लकड़ियाँ लाशके साथ किधर देखते हो, कहाँ जा रहे हो? जाती हैं। चितामें लगकर अग्निकी ज्वालामें वे भी दो-पर हम हैं कि जान-बूझकर अपनी आँखें नहीं तीन घण्टेके भीतर सोने-जैसी कायाको राखके रूपमें खोलते! बदलकर स्वयं भी भस्म हो जाती हैं। कपालक्रिया करके हमने जान-बूझकर अपनी आँखोंपर पर्दा डाल सगे-सम्बन्धी रोते-पीटते घर लौट आते हैं। रखा है। ऐसा न होता तो क्या हमें इस क्षणिक, मिट्टीके बस, जीवनके पर्देका पटाक्षेप हो जाता है। खिलौनेपर इतना गर्व होता? इस शरीरपर, इस पानीभरी खालपर इतना अहंकार होता? विश्वका प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव, छोटा हो या बडा कालका कलेवा है! रामकृष्ण परमहंस कहते थे-'भगवान् दो मौकोंपर हँसते हैं। एक तो तब, जब आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर। फर्क इतना ही है कि-दो भाई रस्सी लेकर जमीनको नापते हैं और कहते हैं— 'इतनी जमीन 'मेरी' है, इतनी 'तेरी' और दूसरे तब, जब एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जंजीर॥ सब जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि मौत कालदेव सिरपर खड़े हैं और डॉक्टर कहता है—'मैं इस रोगीको बचा लुँगा!' आयेगी, एक रोज वह जरूर आयेगी, उससे किसी तरह छुटकारा हो नहीं सकता, परंतु कितने आश्चर्यकी बात स्त्रियों और पुरुषोंको, हर उम्रके लोगोंको, छोटेसे है कि हम ऐसा मान बैठे हैं कि मौतसे हमसे कोई वास्ता होHippelyism Discord Server https://dsc.gg/dhagmantle/ अभिक्रेम् असिम किर्पे किन्न प्रमानिक किर्मा

संख्या ९] जा दिन मन प	iछी उड़ि जैहैं!
************************	**************************************
तोड़ते देखा है। उनकी शवयात्राके साथ श्मशान जानेके	बच्चोंको ढक लेती हैं—कहीं उनपर मृत्युकी छाया न
जीवनमें अनेक मौके आये हैं। कभी हितू-मित्रोंकी,	पड़ जाय।
सगे-सम्बन्धियोंकी, परिचितोंकी शवयात्राके साथ गया	कैसा प्रबल चक्र है मोह और ममताका!
हूँ, तो कभी यों ही मणिकर्णिकाका दृश्य देखने चला	× × ×
गया हूँ। रास्तेमें पिण्डदान करते समय पुरोहित कहता	पर, चाहे जितनी पेशबन्दी करिये, मौतके नामको
है—'श्मशान-मार्गमें यह पिण्ड दिया जा रहा है।'	भी कानोंमें मत पड़ने दीजिये, पर मौत कभी पीछा
सोचता हूँ शवकी यात्रा तो सभी राजपथोंसे होती है, तो	छोड़नेवाली है नहीं।
जिधर देखिये उधर श्मशान-मार्ग ही तो है!	कहते हैं कि लकड़ीका बोझा ढोनेवाला एक
और श्मशानमें देखिये—	बूढ़ा एक दिन थककर बोल पड़ा—'क्या बताऊँ,
कहीं किसीकी चिता लगायी जा रही है, कहीं	मौत भी तो नहीं आती।' और तभी सचमुच मौत
किसीके बच्चेका जलप्रवाह किया जा रहा है। कहीं	सामने आ खड़ी हुई।
चिता सुलग रही है, कहीं चिता धधक रही है। कभी-	बोली—'बाबा, क्यों याद किया है मुझे?'
कभी तो १०-१०, १५-१५ चिताएँ एक साथ धधकती	'कौन है तू?'—बूढ़ेने पूछा।
हैं। कहीं हड्डियाँ पड़ी हैं, कहीं खोपड़ी। कहीं कौए हैं,	'मैं हूँ मौत।'
कहीं गीध हैं, कहीं कुत्ते हैं—लाशोंको नोच रहे हैं।	बूढ़ा बेचारा सन्न रह गया।
सगे-सम्बन्धी बिलखते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं।	पर दूसरे ही क्षण बोल उठा—'मैंने तुझे इसलिये
जगत्की नश्वरता, क्षण-भंगुरताका यह सारा दृश्य	थोड़े ही बुलाया था कि तू मुझे यमराजके घर ले चल।
देखकर जी भर आता है। आँखें भर आती हैं। कभी-	मैंने तो इसलिये बुलाया कि जरा मेरे बोझेमें हाथ
कभी फूट-फूटकर रोनेको भी जी मचलने लगता है।	लगाकर इसे मेरे सिरपर रख दे।'
परंतु ? कितनी देर टिकता है यह श्मशान–वैराग्य ?	हम इसी तरहकी बातें करके मौतको बहला देना
घाटपर ही मन तरह-तरहके सब्जबाग दिखाने	चाहते हैं, पर वह भला हमारे ऐसे चकमोंमें कभी
लगता है—'अरे मूर्ख, जो गया सो गया। मौत आयेगी,	आनेवाली है ? तभी तो कबीरदास ठोक–ठोककर चेतावनी
तब देखा जायगा। अभीसे उसकी चिन्ता क्यों करता है ?	देते हैं—
जीवन तेरे सामने है। जीवनके नाना प्रकारके भोग तेरे	जिअरा तुम जैहौ हम जानी।
सामने हैं। उनका मजा ले। दुनियाके बागकी बहार लूट।	राज करंते राजा जैहैं रूप धरंती रानी॥
यह बहार चन्दरोजा है तो भी क्या? सुख क्षणिक है	राज समान सभासद जैहें, जैहें सब अभिमानी॥
तो भी क्या?'	बेद पढ़ंते पंडित जैहैं, कथा सुनंते ध्यानी॥
मनकी ये लंतरानियाँ श्मशानघाटपर भी अपनी	जोग करंते जोगी जैहैं, ज्ञान रटंते ज्ञानी॥
रौनक दिखाती हैं। जीवनके परम सत्यको देखकर भी	चंदा जैहैं, सूरज जैहैं, जैहैं पवन अरु पानी॥
हम उससे आँखें मूँद लेते हैं। प्रेयके चक्करमें पड़कर	मन औ बुद्धी दोनों जैहैं, जैहैं सकल परानी॥
श्रेयको सर्वथा भुला बैठते हैं।	जोगी जैहैं, जंगम जैहैं, जैहैं जन धन मानी॥
हमारी भोगासक्ति यहींतक नहीं रुकती। हम 'मौत'	कहैं 'कबीर' हरिजन ना जैहैं, जिनकी मित ठहरानी॥
का नामतक लेना नहीं पसन्द करते। मौतके नामसे डरते	मतलब ?
हैं !	जाना सबको है। जिसने भी शरीर धारण किया है,
किसी शवको सड़कपर जाते देख माताएँ अपने	उसे जाना है।

भाग ९२ तब बचेगा कौन? मनुष्य-पशु या दूसरे सबके लिये आती ही है, उसका बचेंगे वही—'जिनकी मित ठहरानी।' डर क्या? और उसका शोक भी क्या? मुझे तो बहुत —जिनकी बुद्धि स्थिर है, जिनकी प्रज्ञा स्थिर है, बार ऐसा लगता है कि जन्मकी अपेक्षा मृत्यू अधिक जो स्थितप्रज्ञ हैं—केवल वे ही बचेंगे। शरीर तो उनका अच्छी चीज होनी चाहिये। जन्मसे पहले नौ महीने यातनाएँ भोगनी पडती हैं और जन्मके बाद भी अनेक भी जायगा, पर वे मरेंगे नहीं। जन्म और मृत्युका बन्धन उन्हें बाँध नहीं सकेगा। उन्हें कष्ट नहीं दे सकेगा, दु:ख हैं, जबिक कुछको मृत्युके अवसरपर ब्राह्मी स्थिति व्यथित और पीडित नहीं कर सकेगा। प्राप्त होती है। इस प्रकारकी मृत्यु प्राप्त करनेके लिये मौतसे बचनेका एकमात्र उपाय है-मृत्युके रहस्यको जीवन अनासक्तियुक्त कामोंमें बीतना चाहिये।' समझ लेना। जो अनिवार्य है, उसका सामना करना ही (पत्र सेठ जमनालाल बजाजको, ८-११-३२) है। तो क्यों न हम हँसते-हँसते उसका स्वागत करें? ५- 'मृत्युके भयको दूर करनेके लिये मनोविकारोंको नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये और प्रसन्नचित्त मौत इक बार जो आना है तो डरना क्या है? रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वे दूर हो जायँगे। नहीं तो, हम सदा खेल ही समझा कि ये मरना क्या है? बुद्धिको स्थिर रखनेका हम अभ्यास करें तो मौत वह बात चरितार्थ होगी कि बन्दरका स्मरण न करनेके भी हमारे लिये एक खेलकी वस्तु बन जायगी। प्रयत्नमें उसका ख्याल बना ही रहा।' महात्मा गाँधीसे लोग समय-समयपर मृत्युके (केपटाउन ७-३-१४, पत्र रावजी भाई पटेलको) विषयमें पूछते रहते थे। उनके उत्तरोंसे हम सब प्रेरणा ६- जन्म और मृत्यु—दोनों ही महान् रहस्य ले सकते हैं— हैं। यदि मृत्यु दूसरे जीवनकी पूर्व-स्थिति नहीं है तो १-'हम ईश्वरको पहचानते हैं तो मृत्युमें आनन्द बीचका समय एक निर्दय उपहास है। हमें यह कला सीखनी चाहिये कि मृत्यु किसीकी और कभी भी मानना सीखना ही चाहिये।' हो, हम उसपर हर्गिज रंज न करें। मेरे खयालमें (पत्र राजाजीको, २६-७-१९३२) २-'मैं मृत्युको भयानक चीज नहीं समझता। ऐसा तभी होगा जब हम सचमुच ही अपनी मृत्युके विवाह भयानक हो सकता है, मृत्यु कभी नहीं।' प्रति उदासीन होना सीखेंगे और यह उदासीनता तब चांदा, १४-११-३३ (बापूके पत्र मणिबहन पटेलके नाम)। आयेगी, जब हमें हर-क्षण यह भान होगा कि हमें ३-'ईश्वरके कालरूपका मनन करनेसे और उसके जो काम सौंपा गया है, उसे हम कर रहे हैं। मुखमें सृष्टिमात्रको जाना है। प्रतिक्षण कालका यह लेकिन यह कार्य हमें कैसे मालूम होगा? वह ईश्वरकी काम चलता ही रहता है-इसका भान हो जानेसे, इच्छाको जाननेसे मालुम होगा। ईश्वरकी इच्छाका सर्वार्पण और जीवमात्रके साथ ऐक्य अनायास हो जाता पता चलेगा—प्रार्थना और सदाचरणसे।' है। चाहे-अनचाहे इसके मुखमें हम अकल्पित क्षण (बापूके पत्र मीराके नाम) पड़नेवाले हैं। वहाँ छोटे-बड़ेका, नीच-ऊँचका, स्त्री-७- 'यह बात गीतामें ही मिलती है कि मृत्युके पुरुषका, मनुष्य-मनुष्येतरका भेद नहीं रहता। कालेश्वरके लिये शोक नहीं करना चाहिये।' एक कौर हैं—यह जानकर हम क्यों दीन शून्यवत् न नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। बनें ? क्यों सबके साथ मैत्री न करें ? ऐसा करनेवालेको उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ यह काल-स्वरूप भयंकर नहीं, बल्कि शान्तिस्थल (२।१६) लगेगा।' (गीताबोध) इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है। ४- जो मृत्यु चाहे जब छोटे-बड़े, गोरे-काले, अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर

संख्या ९] जा दिन मन प	छी उड़ि जैहैं! १३

'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु	मोमबत्ती जलती है, तब उसकी किसी वस्तुका नाश नहीं
नहीं जो कभी किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो; बल्कि	होता; उसी प्रकार जब शरीर मरता है और जलता है,
उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान्, परिवर्तनशील। फिर	तब कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। जन्म और मृत्यु एक ही
भी हम अपने जीवनका सारा व्यवहार यह मानकर	वस्तुकी दो स्थितियाँ हैं। किसी स्वजनके मरणपर हम
चलाते हैं, मानो हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीरको	जो रोते-चीखते हैं, उसका कारण है—स्वार्थ।'
पूजते हैं, शरीरके पीछे पड़े रहते हैं। यह सब हिन्दूधर्मके	(हि० नवजीवन ३०-७-३५)
विरुद्ध है। हिन्दूधर्ममें यदि कोई बात चाँदनीकी तरह	बापूके इन अनमोल उपदेशोंको हम हृदयमें धारण
स्पष्ट कही गयी है तो वह है—'शरीर और दृश्य	कर लें तो हमारा बेड़ा पार हो जायगा। सच बात तो
पदार्थोंकी असत्ता।' फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं,	यह है कि हमारी बुद्धि स्थिर हो; मोह और ममता, राग
रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई करते हों।	और द्वेषके चक्करसे हम अपनेको मुक्त कर लें; फिर तो
महाभारतमें तो यह कहा गया है कि रुदनसे मृत	मौतका सारा डर ही दूर हो जायगा।
आत्माको संताप होता है और गीता इसीलिये लिखी गयी	और वह दूर हुआ कि हमारा सारा जीवन ही
है कि लोग मृत्युको कोई भी भीषण वस्तु न मानें।	पवित्र और आनन्दमय बन जायगा; साथ-ही-साथ
मनुष्यका शरीर काम करते–करते थक जाता है। अनेक	मृत्यु भी।
शरीर तो मृत्युके द्वारा दु:खसे मुक्त होते हैं। गीता हमें	दूसरी दृष्टिसे सोचें तो मृत्युका भय यदि वस्तुत:
सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठको समझता जा रहा	हमें आक्रान्त कर ले, तब भी काम बन सकता है। फिर
हूँ कि अशाश्वत वस्तुके लिये की गयी सारी चिन्ता व्यर्थ	तो हमें सच्चे वैराग्यकी प्राप्ति हो जायगी। 'मौत सिरपर
है, व्यर्थ कालक्षेप है।	लटक रही है'—इतना विश्वास दृढ़ हो जाय तो फिर
'असत्का भाव'—इसका अर्थ है—अस्तित्वका	हमसे कोई गलत काम होगा ही कैसे? कोई पाप हमसे
न होना और जो सत् है, उसका नाश कभी नहीं	बनेगा ही कैसे? किसीको हम सतायेंगे ही कैसे, जब
हो सकता।	कि हम जानते हैं कि पता नहीं कलका सूर्योदय हम देख
गीता इस श्लोकमें पुकार-पुकारकर कहती है कि	सकेंगे भी या नहीं।
हम अपने जीवनमें सत्यको धारण करके जियें और	पर इस भयको हम आँख मूँदकर टाल देते हैं; किंतु
माया, असत्य, पाखण्डका त्याग करें। अनेक बार वाणी	हम लाख टालें, वह टलनेवाला है नहीं। तब बुद्धिमानी
असत्य हो जाती है, पाखण्ड-रूप हो जाती है। क्रोध	इसीमें है कि हम जीवनके रहे-सहे क्षणोंको जीवनके
असत् है। काम, मोह, मद आदि असत् हैं। हमें इन	एकमात्र चरम लक्ष्य प्रभुप्राप्तिके लिये ही प्रभुके चरणोंमें
तमाम सर्पोंका सत्र करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा	अर्पित कर दें। हम जो कुछ करें, सो सब प्रभु-पूजा ही
केवल शरीरको कष्ट देता है, पर ये सर्प तो हमारी रग-	हो। प्रभुसे हमारी एक ही प्रार्थना हो कि 'नाथ!
रगमें पहुँच जाते हैं और हमारी आत्माको भी हानि	जीवनकी अन्तिम बेलामें तुम ही मेरे समक्ष हो'—
पहुँचानेकी धमकी देते हैं। परंतु आत्माको हानि नहीं	इतना तो करना भगवन्, जब प्रान तनसे निकलें।
पहुँच सकती। वह अविनाशी है। यदि हम इस बातको	श्री जमुनाजी का तट हो अरु पास वंशीवट हो॥
समझ लें कि सत् क्या है तो जन्म-मृत्युका रहस्य भी	वह साँवला निकट हो, जब प्रान तन से निकलें।
समझ जायँगे।	फिर तो धन्य और पवित्र हो जायगा हमारा जीवन
जिस प्रकार रसायनशास्त्री कहते हैं कि जब	और धन्य तथा पवित्र हो जायगी हमारी मृत्यु!
	>

साधनामें दैन्यभावका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

साधकोंके लिये एक बहुत उत्तम उपाय है-और कहाँ जाय? आप-सरीखे अनाथनाथके सिवाय

परमेश्वरके सामने आर्त होकर दीनभावसे हृदय खोलकर जगत्में ऐसा कौन है जो मुझपर दयादृष्टि करे! प्रभो!

मेरे पापोंका पार नहीं है, जब मैं अपने पापोंकी ओर

रोना। यह साधन एकान्तमें करनेका है। सबके सामने

करनेसे लोगोंमें उद्वेग होने और साधनके दम्भरूपमें देखता हूँ, तब तो मुझे बड़ी निराशा होती है, करोड़ों

परिणत हो जानेकी आशंका रहती है। प्रात:काल, जन्मोंमें भी उद्धारका कोई साधन नहीं दीखता, परंतु जब

सन्ध्या-समय, रातको, मध्यरात्रिके बाद या उषाकालमें आपके विरदकी ओर ध्यान जाता है, तब तुरंत ही मनमें

जब सर्वथा एकान्त मिले, तभी आसनपर बैठकर मनमें ढाढ़स आ जाता है। आपके वे वचन स्मरण होते हैं,

यह भावना करनी चाहिये कि 'भगवान् यहाँ मेरे सामने जो आपने रणभूमिमें अपने सखा और शरणागत भक्त

अर्जुनसे कहे थे-

उपस्थित हैं, मेरी प्रत्येक बातको सुन रहे हैं और मुझे

देख भी रहे हैं।' यह बात सिद्धान्तमें भी सर्वथा सत्य

है कि भगवान् हर समय हर जगह हमारे सभी कामोंको

देखते और हमारी प्रत्येक बातको सुनते हैं। भावना बहुत

दृढ़ होनेपर, भगवानुका जो स्वरूप इष्ट हो, वह स्वरूप

साकार रूपमें सामने दीखने लगता है एवं प्रेमकी वृद्धि

होनेपर तो भगवत्कृपासे भगवान्के साक्षात् दर्शन भी हो

सकते हैं। अस्तु!

नियत समय और यथासाध्य नियत स्थानमें प्रतिदिन

नित्यकी भाँति किसी आसन या पृथ्वीपर बैठकर भगवान्को

अपने सामने उपस्थित समझकर दिनभरके पापोंका

स्मरणकर उनके सामने अपना सारा दोष रखना चाहिये और महान् पश्चात्ताप करते हुए आर्तभावसे क्षमा तथा

फिर पाप न बने, इसके लिये बलकी भिक्षा माँगनी

चाहिये। हो सके तो भक्तश्रेष्ठ श्रीसुरदासजीका यह पद

गाना चाहिये या इस भावसे अपनी भाषामें सच्चे हृदयसे

विनय करनी चाहिये।

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी॥

जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोन-हरामी।

भरि भरि उदर बिषें कौं धावत, जैसें सुकर ग्रामी॥

सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि सँग बिसरामी।

श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी॥

पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी। सुरदास प्रभु अधम-उधारन, सुनियै श्रीपति स्वामी॥

होता। हे भाई! तू सब धर्मींको छोड़कर केवल एक मुझ वासुदेव श्रीकृष्णकी शरण हो जा, मैं तुझे सारे पापोंसे

छुड़ा दूँगा, तू चिन्ता न कर।'

कितने सबल शब्द हैं। आपके अतिरिक्त इतनी उदारता और कौन दिखा सकता है? '*ऐसो को*

उदार जग माहीं।' परंतु प्रभो! अनन्यभावसे भजन

करना और एकमात्र आपहीकी शरण होना तो मैं

नहीं जानता। मैंने तो अनन्त जन्मोंमें और अबतक

अपना जीवन विषयोंकी गुलामीमें ही खोया है, मुझे

तो वही प्रिय लगे हैं, मैं आपके भजनकी रीति नहीं समझता। अवश्य ही विषयोंके विषम प्रहारसे अब

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥

भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने

अबसे आगे केवल भजन करनेका ही भलीभाँति निश्चय

कर लिया है। अतएव वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता

है और सनातन परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन!

तु निश्चयपूर्वक सत्य समझ कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं

'अत्यन्त पापी भी अनन्यभावसे मुझको निरन्तर

(गीता ९।३०-३१, १८।६६)

(सुरसागर ४८) मेरा जी घबड़ा उठा है, हे नाथ! आप अपने ही Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha दीनबन्धी! यह पापा आपके चरणांकी छोड़्कर विरदेकी देखकर मुझ अपना शरणमें रखिये और

संख्या ९] साधनामें दैन्य	भावका महत्त्व १५
**************************************	**************************************
ऐसा बल दीजिये, जिससे एक क्षणके लिये भी	ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥
आपके मन-मोहन रूप और पावन नामकी विस्मृति	(विनय-पत्रिका ७९)
न हो। हे दीनबन्धो! दीनोंपर दया करनेवाला आपके	हे पतितपावन! हे आर्तत्राणपरायण! हे दयासिन्धो!
समान दूसरा कौन है ?	बुरा-भला जो कुछ हूँ, सो आपका हूँ, अब तो
दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ।	आपकी शरण आ पड़ा हूँ, हे दीनके धन! हे अधमके
जाहि दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ॥	आश्रय! हे भिखारीके दाता! मुझे और कुछ भी नहीं
सुर, नर, मुनि, असुर, नाग, साहिब तौ घनेरे।	चाहिये। ज्ञान-योग, तप-जप, धन-मान, विद्या-बुद्धि,
(पै) तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥	पुत्र-परिवार और स्वर्ग-पाताल किसी भी वस्तुको या
त्रिभुवन, तिहुँ काल बिदित, बेद बदित चारी।	पदकी इच्छा नहीं है। आपका वैकुण्ठ, आपका परम
आदि-अंत-मध्य राम! साहबी तिहारी॥	धाम और आपका मोक्षपद मुझे नहीं चाहिये। एक
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।	बातकी इच्छा है, वह यह कि आप मुझे अपने
सुनि सुभाव-सील-सुजसु जाचन जन आयो॥	गुलामोंमें गिन लीजिये, एक बार कह दीजिये कि 'तू
पाहन-पसु बिटप-बिहँग अपने करि लीन्हे।	मेरा है।' प्रभो! गोस्वामीजीके शब्दोंमें भी आपसे
महाराज दसरथके! रंक राय कीन्हे॥	इसी अभिमानकी भीख माँगता हूँ—
तू गरीबको निवाज, हौं गरीब तेरो।	अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥	(रा०च०मा० ३।११।२१)
(विनय-पत्रिका ७८)	बस, इसी अभिमानमें डूबा हुआ जगत्में निर्भय
हे तिरस्कृत भिखारियोंके आश्रयदाता! आपको	विचरा करूँ और जहाँ जाऊँ वहीं अपने प्रभुका कोमल
छोड़ ऐसा दूसरा कौन है, जो प्रेमसे दीनोंको छातीसे	करकमल सदा मस्तकपर देखूँ—
लगा ले? जिसको सारा संसार घृणाकी दृष्टिसे देखता	हे स्वामी! अनन्य अवलम्बन, हे मेरे जीवन-आधार।
है, घरके लोग त्याग देते हैं, कोई भी मुँहसे बोलनेवाला	तेरी दया अहैतुकपर निर्भर कर आन पड़ा हूँ द्वार॥
नहीं होता, उसको आप तुरंत गोदमें लेकर मस्तक	जाऊँ कहाँ जगतमें तेरे सिवा न शरणद है कोई।
सूँघने लगते हैं, हृदयसे लगाकर अभय कर देते हैं।	भटका, परख चुका सबको, कुछ मिला न अपनी पत खोई॥
रावणके भयसे व्याकुल विभीषणको आपने बड़े प्रेमसे	रखना दूर, किसीने मुझसे अपनी नजर नहीं जोड़ी।
अपने चरणोंमें रख लिया, पाण्डव-महिषी द्रौपदीके	अति हित किया, सत्य समझाया, सब मिथ्या प्रतीति तोड़ी॥
लिये आपने ही वस्त्रावतार धारण किया, गजराजकी	हुआ निराश, उदास गया विश्वास जगतके भोगोंका।
पुकारपर आप ही पैदल दौड़े। ऐसा कौन पतित है,	जिनके लिये खो दिया जीवन, पता लगा उन लोगोंका॥
जो आपको पुकारनेपर भी आपकी दयादृष्टिसे वंचित	अब तो नहीं दीखता मुझको तेरे सिवा सहारा और।
रहा है? हे अभयदाता! मैं तो हर तरहसे आपकी	जल-जहाजका कौआ जैसे पाता नहीं दूसरा ठौर॥
शरण हूँ, आपका ही हूँ, मुझे अपनाइये प्रभो!	करुणाकर! करुणा कर सत्वर, अब तो दे मन्दिर-पट खोल।
तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।	बाँकी झाँकी नाथ! दिखाकर तनिक सुना दे मीठे बोल॥
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥	गूँज उठे प्रत्येक रोममें परम मधुर वह दिव्य-स्वर।
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो।	हृत्तन्त्री बज उठे साथ ही मिला उसीमें अपना सुर॥
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो॥	तन पुलकित हो, सुमन-जलजकी खिल जायें सारी कलियाँ।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।	चरण मृदुल बन मधुप उसीमें करते रहें रंगरलियाँ॥
तात-मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥	हो जाऊँ उन्मत्त, भूल जाऊँ तन-मनकी सुधि सारी।
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानिये जो भावै।	देखूँ फिर कण-कणमें तेरी छिब नव-नीरद घन प्यारी॥

सके। जब पुलिसका एक साधारण सिपाही भी राज्यके हे स्वामिन्! तेरा सेवक बन, तेरे बल होऊँ बलवान। सेवकके नाते राज्यके बलपर निर्भय विचरता है और पाप-ताप छिप जायें हो भयभीत, मुझे तेरा जन जान॥ चाहे जितने बडे आदमीको धमका देता है, तब जिसने (पद-रत्नाकर १४७)

इस भावकी प्रार्थना प्रतिदिन करनेसे बडा भारी बल मिलता है। जब साधकके मनमें यह दृढ निश्चय हो

जाता है कि मैं भगवानुका दास हूँ, भगवानु मेरे स्वामी हैं, तब वह निर्भय हो जाता है। फिर माया-मोहकी और पाप-तापोंकी कोई शक्ति नहीं जो उसके सामने आ

(श्रीराजेशजी माहेश्वरी)

कुछ वर्षों बाद प्जारीजी अचानक बीमार पड़ गये। जाँचके उपरान्त पता चला कि वे कैंसर-जैसे घातक रोगकी अन्तिम अवस्थामें हैं। यह जानकर वे फूट-फूटकर रोने और भगवान्को उलाहना देने लगे

उनका जीवन बड़ी पीड़ादायक स्थितिमें बीत रहा था। एक रात अचानक ही उन्होंने स्वप्नमें देखा

जबलप्र शहरसे लगी हुई पहाडियोंपर एक पुजारीजी रहते थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि पहाडीसे

गिरे हुए पत्थरोंको धार्मिक स्थलका रूप दे दिया जाय। इसे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये उन्होंने एक

पत्थरको तराशकर मूर्तिका रूप दे दिया और आसपासके गाँवोंमें मूर्तिके स्वयं प्रकट होनेका प्रचार-प्रसार

करवा दिया।

इससे ग्रामीण श्रद्धालुजन वहाँपर दर्शन करने आने लगे। इस प्रकार बातों-बातोंमें ही इसकी चर्चा

शहरभरमें होने लगी कि एक धार्मिक स्थानका उद्गम हुआ है। इस प्रकार मन्दिरमें दर्शनके लिये लोगोंकी

बोधकथा-

भारी भीड़ आने लगी। वे वहाँपर मन्ततें माँगने लगे। अब श्रद्धालुजनोंद्वारा चढ़ायी गयी धनराशिसे पुजारीजीकी तिजोरी भरने लगी और उनके कठिनाइयोंके दिन समाप्त हो गये। मन्दिरमें लगनेवाली भीड़से आकर्षित होकर

नेतागण भी वहाँ पहुँचने लगे और क्षेत्रके विकासका सपना दिखाकर अपनी लोकप्रियता बढ़ानेका प्रयास करने लगे।

कि हे प्रभु! इतना कठोर दण्ड क्यों दिया जा रहा है? मैंने तो जीवनभर आपकी सेवा की है। कि प्रभु उनसे कह रहे हैं कि तुम मुझे किस बातका उलाहना दे रहे हो? याद करो, एक बालक भूखा-

प्यासा मन्दिरकी शरणमें आया था। अपने उदरपूर्तिके लिये विनम्रतापूर्वक दो रोटी माँग रहा था, परंतु तुमने उसकी एक ना सुनी और उसे दुत्कारकर भगा दिया। एक दिन एक वृद्ध बरसते हुए पानीमें मन्दिरमें आश्रय पानेके लिये आया था। उसे मन्दिर बन्द होनेका कारण बताते हुए तुमने बाहर कर दिया था। गाँवके कुछ विद्यार्थीगण अपनी शालाके निर्माणके लिये दानहेतु निवेदन करने आये थे। उन्हें शासकीय योजनाओंका लाभ लेनेका सुझाव देकर तुमने विदा कर दिया था। मन्दिरमें प्रतिदिन जो दान आता है, उसे जनहितमें

खर्च न करके, यह जानते हुए भी कि यह जनताका धन है, तुम अपनी तिजोरीमें रख लेते हो। तुमने एक

विधवा महिलाके अकेलेपनका फायदा उठाकर उसे अपनी इच्छापूर्तिका साधन बनाकर उसका शोषण किया और बदनामीका भय दिखाकर उसे चुप रहनेपर मजबूर किया।

भाग ९२

(साधन-पथ)

इतने दुष्कर्मों के बाद तुम्हें मुझे उलाहना देनेका क्या अधिकार है ? तुम्हारे कर्म कभी धर्मप्रधान नहीं रहे। जीवनमें हर व्यक्तिको उसका कर्मफल भोगना ही पड़ता है। इन्हीं गलतियोंके कारण तुम्हें इसका दण्ड भोगना पड़ेगा। पुजारीजीकी आँखें अचानक खुल गयीं और स्वप्नमें देखे गये दृश्य मानो यथार्थमें उनकी आँखोंके सामने घूमने लगे और पश्चात्तापके कारण उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहुने लगी।

अखिल-लोकस्वामी 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः'

भगवानुको अपने स्वामीरूपमें पा लिया है, उसके बलका क्या पार है ? ऐसा भक्त स्वयं निर्भय हो जाता है और

जगतुके भयभीत जीवोंको भी निर्भय बना देता है।

संख्या ९] कृतज्ञता कृतज्ञता (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) 'तत्त्वार्थसूत्र'का एक वाक्य है—'परस्परोपग्रहो उपकारोंको सदा स्मरण रखकर उनका कृतज्ञ होना जीवानाम्' अर्थात् जगत्के जीव एक-दूसरेसे उपकृत चाहिये। मनुष्यपर प्रभु और प्रकृतिके भी अनन्त उपकार होते रहते हैं। संसारका प्रवाह अनादि कालसे चला आ तो हैं ही; अत: हम परमात्माके कृतज्ञ हों, यह सदा-रहा है। अत: पता नहीं, हमारी आत्माने कितने जीवोंको सर्वदा परम आवश्यक है। दूसरेके किये हुए उपकारको किस-किस तरह एवं कब-कब उपकृत किया है या भूल जानेवालेको 'कृतघ्न'की संज्ञा दी जाती है और किन-किन जीवोंसे हम स्वयं उपकृत होते रहे हैं। अनेक स्मरण रखनेवालेको 'कृतज्ञ' कहा जाता है। जन्मोंकी बात एक बार छोड़ भी दें और केवल इस यहाँ कृतज्ञकी महत्ता और कृतघ्नकी निकृष्टता जन्मपर ही विचार करें तो भी हमें ऐसा प्रतीत होगा कि सूचित करनेवाले कुछ श्लोक दिये जाते हैं-जन्मसे लेकर अबतक सैकडों-हजारों व्यक्तियोंसे हमने न विस्मरन्ति संतस्तु स्तोकमप्यपकारकम्। सहायता ली है एवं सहयोग प्राप्त किया है। हमारा कर्तुः प्रत्युपकारे ते व्यापृताः स्युर्हदा सदा॥ वर्तमान जीवन बहुत कुछ दूसरोंके सहयोग-सहायता एवं प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः उपकारसे ही गतिमान् है। परंतु हम दूसरोंके उपकारोंको शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्। बहुत कम याद रखते हैं। उनके द्वारा हुई बहुत-सी उदकममृततुल्यं दद्युराजीवितान्तं बातोंको हम साधारण-सी मान लेते हैं और दूसरेके न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥ 'साधु पुरुष या संत-महात्मा किसीके थोड़े-से भी उपकारोंकी उपेक्षा कर देते हैं। इसीलिये हमारे प्राचीन उपकारको कभी भूलते नहीं हैं। वे उपकारी पुरुषका महर्षियों एवं विद्वानोंने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि किसीके छोटेसे या थोड़ेसे उपकारको भी हमें सदा प्रत्युपकार करनेके कार्यमें सदा हृदयसे तत्पर रहते हैं। स्मरण रखना चाहिये, उसे कभी नहीं भूलना चाहिये। नारियलके छोटे पौधेको मनुष्य जलसे सींचते हैं। अपनी मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान्-जैसे निस्स्पृह प्रथम अवस्थामें पीये गये उस थोड़े-से जलको याद एकनिष्ठ सेवकके द्वारा की गयी सेवाओंके प्रति अपनेको रखते हुए वे नारियलके वृक्ष अपने सिरपर सदा जलका कृतज्ञ अनुभव करते और कहते हैं—'हे हनुमान्! भार उठाये रखते हैं और जीवनपर्यन्त मनुष्योंको अमृतके तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि-तुल्य स्वादिष्ट जल देते रहते हैं। सच है, साधुजन कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं बदलेमें तुम्हारा उपकार किसीके किये हुए उपकारको कभी भूलते नहीं हैं।'— तो क्या करूँ, मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता। कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्। हे पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ तुमसे उऋण नहीं हो सकता।' 'कृतघ्नको कहाँ यश, कहाँ स्थान और कहाँ सुख मिलता है। कृतघ्न मनुष्यपरसे सबका विश्वास उठ जाता सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥ है। कृतघ्नके उद्धारके लिये कोई उपाय या प्रायश्चित्त प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥ नहीं है।' तात्पर्य यह कि कृतघ्न होना इतना बड़ा पाप सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥ (रा०च०मा० ५। ३२। ३-५) है कि उससे मनुष्यका कभी उद्धार नहीं होता, पर कृतज्ञ ऐसे ही अनेक आदर्श हमारे शास्त्रोंमें उपलब्ध पुरुष विरले ही होते हैं। कहा भी है-होते हैं। दूसरोंके दोषोंको तथा अपने किये हुए विद्वांसः शतशः स्फुरन्ति भुवने सन्त्येव भूमीभृतो उपकारोंको भूल जाना अच्छा है, पर दूसरोंके किये हुए वृत्तिं वैनयिकीं च बिभ्रति कति प्रीणन्ति वाग्भिः परे।

भाग ९२ जिसके द्वारा यह शरीर प्राप्त होता है, बढ़ता है, पुष्ट दृश्यन्ते सुकृतक्रियासु कुशला दातापि कोऽपि क्रचित् कल्पोर्वीरुहवद्वने न सुलभः प्रायः कृतज्ञो जनः॥ होता है और कार्यक्षम बनता है। माताको साढ़े नौ 'संसारमें विद्वान् तो सैकडों दृष्टिपथमें स्फुरित होते महीनेतक गर्भस्थ शिशुको कितने कष्टसे उदरमें रखना हैं; राजाओंकी भी कमी नहीं है; विनयशील वृत्तिको भी पडता है, उसके रक्षण और पोषणके लिये कितना सतर्क कितने ही लोग धारण करते हैं; दूसरे ऐसे सज्जन भी रहना पड़ता है, यह भुक्तभोगी माता ही जानती है। हैं, जो अपने वचनोंसे सबको प्रसन्न कर लेते हैं; बच्चेके जन्मके समयकी प्रसववेदना कितने भयंकररूपमें पुण्यकर्ममें कुशल पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं और भोगनी पड़ती है। उस विषम अवसरपर कई माताएँ तो कहीं-कहीं कोई दाता भी मिल ही जाता है; यह सब अपने प्राणोंकी बलितक भी चढ़ा देती हैं, यह सभी कुछ है, परंतु जैसे वनमें कल्पवृक्ष सुलभ नहीं है, उसी अच्छी तरहसे जानते हैं। जन्मके बाद भी बच्चेके प्रकार आजकल कृतज्ञ मनुष्य प्राय: दुर्लभ हैं।' पालन-पोषणमें माताको कितना कष्ट उठाना पड़ता है। आज तो कृतज्ञताका दुष्काल ही दिखायी देता है। रात-रातभर जागना पड़ता है। उसके मल-मूत्रको साफ कृतघ्न व्यक्तियोंकी ही अधिकता है। अतः पाठकोंसे करनेमें घृणा और देरी नहीं की जा सकती। जननी स्वयं कृतज्ञता अपनानेका अनुरोध है; यही हम सबका कर्तव्य गर्मी-सर्दी सहन करती है, पर बच्चेको तनिक भी गर्मी-भी है। 'कृतज्ञता' बहुत बड़ा गुण है। मनुष्यमें ही नहीं, सर्दी न लग जाय, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उसे वह पशु-पक्षियोंमें भी पाया जाता है। वे भी उपकारोंका अपने खाने-पीनेमें भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है, बदला चुकानेके लिये अपने प्राणोंतककी बलि दे देते हैं। इच्छाओंपर रोक लगानी पड़ती है। शिशु कहीं गिर न जाय, उसे कोई दु:ख-दर्द न हो, इसकी भी वह पूरी जब पशुओंकी ऐसी स्थिति है, तब मनुष्य तो उनकी अपेक्षा विशेष विवेकशील प्राणी है; उसे तो कृतज्ञ होना सावधानी रखती है। ऐसी जन्मदात्री एवं लालन-पोषण करनेवाली मॉॅंके उपकारको भी बड़े होनेपर बच्चे भूल ही चाहिये; क्योंकि कृतघ्नताको सबसे बड़ा पाप बतलाया गया है। जाते हैं, यह सबसे बड़ी कृतघ्नता है। आजकल अनेक अवसरोंपर किया हुआ थोड़ा-सा भी आधुनिक शिक्षाके प्रवाहमें बहनेवाले युवक तो यहाँतक उपकार बहुत बड़ा काम कर जाता है। यदि उस समय कह देते हैं कि 'इसमें उपकारकी क्या बात हुई, अपने कोई सहयोग सहायता देनेवाला न मिले तो भारी हानि मोहके कारण ही वह सब काम करती है।' मॉॅंके बाद दूसरा स्थान पिताका है। घरका सारा उठानी पड़ती है। सम्पूर्ण जीवनके लिये भी खतरा पैदा हो जाता है। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते। इसलिये खर्च दिनभर परिश्रम करके और खोटे-खरे काम करके पिता किसी तरह चलाते हैं। अपने बच्चोंको अच्छा उपकारीके उपकारको भूल जाना कदापि उचित नहीं है। जहाँतक हो सके, हृदयमें तो उसके प्रति सद्भाव रखें खाना-कपड़ा मिले, वे अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई ही; साथ ही प्रकटरूपमें भी और दूसरोंके सामने भी करके होशियार बनें, इसलिये पिताको अत्यधिक प्रयत्न करना पड़ता है। पर जब बच्चा अपने पैरोंपर खड़ा उसका उपकार मानना चाहिये। इतना ही नहीं, यथाशक्ति उस उपकारका बदला चुकानेका भी पूरा प्रयत्न करना होनेयोग्य बन जाता है, उसका विवाह हो जाता है, तब वह माता-पिताकी अवहेलना करना प्रारम्भ कर देता है। चाहिये। पर आज 'कृतज्ञता'का भाव अत्यधिक शिथिल हो गया है। इससे भारतकी प्राचीन संस्कृतिको बहुत कुछ लोग तो अपने माता-पिताको मारते-पीटतेतक हैं। धक्का पहुँचा है। आवश्यकता है-पुनः उस आदर्शको उनको समयपर अच्छा खाना नहीं देते, रोगी होनेपर न जीवनमें अपनानेकी। ठीकसे इलाज करवाते हैं और न सेवाशुश्रुषा करते हैं। Hinduismu Discated Setvent https: #dsfrigg/qhatma_funMADFaWtTh delina हार Avilage has

उचित सार-सँभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा नकरें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। संतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे प्रलोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है ऐसे धर्मगुरुओंके प्रति भी आदर और श्रद्धाकी कर्म बहुत ही खटकनेवाली है। इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमा प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका साधार उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा विध्य बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय कनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय कनि विषय कन विवय कर बैटते हैं। उनके अगरसे कुत्वताको कम नहीं हो और कुलपतियोंतकका घेराव कर बैटते हैं। उनके विद्यान करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य के विद्यालयोंको नुकसान पहुँचनेयों निकसो विवय करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य के विद्यालयोंको ते निकसो स्वय्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य ह्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य ह्यांग्य करनेयोंग्य हत्यांग्य करनेयोंग्य ह्यांग्य करनेयांग्य ह्यांग्य ह्यांग्य करनेयांग्य ह्यां	संख्या ९] कृत	ज्ञता १९
पत्नीके इतने वशीभृत हो जाते हैं कि माता-पिताको अनेक प्रकारसे कष्ट देनेमें भी वे नहीं हिचिकचाते। जो हमें बुराइयोंसे बचाते हुए सद्गुणोंके विकास औ नैतिक उत्थानकी निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं। जिन्न उत्ति सार-सँभालसे मुख मोड़ लोते हैं। चाहे वे सेवा मानव अनेक दुःखों और पापोंसे बचते हुए इहलोक औ पत्लोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है एसे धर्मगुरुओंके प्रति भी आदर और श्रद्धाकी कम्प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात समझी जाती है। प्राचीनकालमें प्रातः उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आझाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीवांद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे 'समूतों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय? तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको भूलकर जो व्यक्ति गुरुकनोंके प्रति आदरका भाव वर्चा कुकी है कि विद्यार्थों अध्यापकों और कृतवाति हैं। अज करने बेठते हैं। उनके विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषम हो चुकी है कि विद्यार्थों अध्यापकों और कृतपतियोंतकका घराव कर बैठते हैं। उनके वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उत्तेजना भूत्रसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना भूत्रसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना भूत्रसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। हैं विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना भूत्रसान करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उत्तेजना भूत्रसान करनेयोग्य हत्याएँतक करनेयोग्य हत्याएँतक करनेयोग्य हत्याएँतक करनेयोग्य हत्याएँतक करनेयोग्य हत्याएँतक करनेयोग्य हत्याएँतक करनेया हिश्सान पहुँचाने भूत्रसान पहुँचाने भूत्रसान पहुँचान प्राप्त हो त्यार विश्वार विश्वार विश्वार विश्वार विश्वार विश्		
अनेक प्रकारसे कप्ट देनेमें भी वे नहीं हिचिकचाते। जो हमें बुराइयोंसे बचाते हुए सद्गुणोंके विकास औ पिताकी सम्पत्तिके वे मालिक तो बन जाते हैं, पर उनकी उचित सार-सँभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। संतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात समझी जाती है। प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करनेमें संकांचका अनुभव करते हैं। ऐसे 'सप्तूनों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय? ती सर, जा बच्चोंको हर तरहको सुविधा एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको भूलकर जो व्यक्ति मुस्केनिक कहानियाँ तो आज सर्वत्र वचर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी वषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं और कुल्पितियोंतकका घराव कर बैठते हैं। उनके वचर्चोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार र वेत्रसेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार र	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	
पिताकी सम्पत्तिक वे मालिक तो बन जाते हैं, पर उनकी उचित सार-सँभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा मन अनेक दु:खों और पापोंसे बचते हुए इहलोक औ पर उसे एस उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। पर लोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है ऐसे धर्मगुरुओंके प्रति भी आदर और श्रद्धाकी कम् बहुत ही खटकनेवाली है। इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमा प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण बेष-भूषावाल और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको कम् सम्पद्ध करनेमें संकोचका अनुभक करते हैं। ऐसे 'सपूर्तो' से सेवाकी क्या आशा एखी जाय? तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविध एखे सिक्षा वेते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको तो उनक क्रावे हैं हो। जान तो स्थित इतनी विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और क्वाचे हो कि विद्यार्थी अध्यापकों और कुलपितयोंतकका घराव कर बैठते हैं। उनके वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रखते होरा तुम्हारा तिक-सा भी उपकार रखते होरा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रक्ते होरा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रक्ते होरा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रचन निर्ने हमान प्राप्त निर्ने हमान प्राप्त निर्त		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
उचित सार-सँभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। सतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात प्रमुखी जाती है। इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमा प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पद्मिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको हूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका प्राचात करने तथा उनका प्राचात करने तथा उनका तथा उनका समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे सहयोगपर आधारित एवं निर्भर है। अत: प्रत्येक व्यक्ति अपनोमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकास करते जैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव नहीं रखते, ऐसे युवकोंको कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय कित विषय कर बैठते हैं। उनके ज्ञान निर्मर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके मार-पीट देते हैं और कुल्पितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके विचानियों में भी कमी नहीं रखते। उत्तेजा निरम्स हों प्रोपकार मननीय हैं— कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्चद्वेय भाईज श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारक ये विचार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विवार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विवार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विशेषरूप मननीय हैं—		3 (3
न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। परलोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है सेतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे प्रस्त रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात प्रमान आपता है। प्राचीनकालमें प्रातः उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको हूस साथ उनका पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका सेता है। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको क्रांत हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको क्रांत होता है, प्रत्युपकारको कान याद रखेगा? आप दूसरोंके उपकारव सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको कही व्यक्ति हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय कर बैठते हैं। उनके ज्ञान निर्मर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी क्लापतियोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके विचारियों निर्मर करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उनके विचारियों निरमर करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उनके विद्या पढ़ेचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेज माननिय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विश्व क्रांत होरा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विवार विशेषरूप परेपकार मेनिय हैं। विचार विशेषरूप परेपकार मेनिय हैं। तिकार विशेषरूप परेपकार सेत्र हुसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विशेषरूप मानीय हैं— 'दूसरेक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विश्व करात हैं। विश्व विद्या विशेषरूप मानीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विशेषरूप मानीय हैं—	पिताकी सम्पत्तिके वे मालिक तो बन जाते हैं, पर उनकी	नैतिक उत्थानकी निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं। जिनसे
संतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे पूसकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात समझी जाती है। इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमा फ्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करता, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे कसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे कसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे कसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय किसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय किसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय किसीने आज्ञाक पालन करना, उनको हर तरहसे किसीने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय किसीने उपकार करने अश्वाको विभाग करना प्रत्येक स्वान जितने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिय किसीने आर्था करने उपकार करने अश्वाको निर्मात करना प्रत्येक स्वान जितने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिया कितीने उपकार करने अश्वाको निर्म स्वान अश्वाको निर्म स्वान अश्वाको निर्म स्वान सहयोग दिया, सद्वुद्ध दी तथा किसी स्वान जितने अश्वाको करणावस्था और कप्याक्त करने सहयोगर अथान स्वान सहयोगर आधारित एवं निर्मर है। अतः प्रत्येक व्यक्ति क्राचेति है। ऐसे करने में संकोचका अशार रखी जाय? जीतर अवके की क्या आशार रखी जाय? तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, पेस अक्ताको कर तहीं है। पेस अक्ताको कर तहीं है। प्रत्युपकार की को मान सबके मनमें होती है, प्रत्युपकार की कामना सबके मनमें होती है, प्रत्युपकार की को मान सहयोग अशार सहयोग अशार अशार सहयोग अशार अशार सहयोग अशार अशार सहयोग अशार अशार अशार अशार अशार अशार अशार अशार	उचित सार-सँभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा	मानव अनेक दु:खों और पापोंसे बचते हुए इहलोक और
प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात समझी जाती है। प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे कसीने सत्परामर्श दिया, सद्बुद्धि दी तथा किसी सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा वेकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको नेत्रहों रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषम हो चुकी है कि विद्या करनेमें ही अपनी वान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको तुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। प्रत्युक्तावेश सिप्सिक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार र इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमा इसी तरह जीवनमें ज्ञान कितने जानों हित किती उपकार किती है। किती ने स्थान सहायता की। इः इसी तरह जीवनमें एवल कितने जानों हमा कितने उपकार किती ने स्थान करणावस्था और कप्टके समय सेवा-सहायता की। इः स्थान उपकार कियों करणावस्था और कप्टके समय सेवा-सहायता की। इः स्थान उपकार कियों के स्थान सहायता की। इः स्थान प्रशान स्थान आशा स्थान जाने हा दूसरेंक अपने सहयोग साहिये। अर्था कत के ही व्यक्ति हो प्रति है। अर्था कत के ही व्यक्ति हो प्रति है। अर्था विद्या स्थान सहयोग हिता के स्थान सहयोग हिता है। इसी तरह जीवनों स्थान सहयोग हिता किती। इस सार जीवा चहा सहयोग हिता किती है। प्रत्युद्ध दी तथा किती। इस स्थान सहयोग किती सहयोग आशा सहयोग आशा सहयोग का सहयोग का सहयोग का सहयोग हिता है। प्रति हैं किती वेषा सहयोग हिता है। प्रति हैं किती वेषा सहयोग हिता है। प्रति हैं विद्या सहयोग हिता किती स्थान सहयोग हिता किती है। प्रति हैं विद्या सहयो है। इस सार जीवा सहयोग हिता सहयोग अपने हैं किती विद्या सहयोग हिता किती है। प्रति हैं विद्या सहयो है। इस सार जीवा सहयोग हिता किती सहयोग सहयोग हिता है। प्रति हैं क	न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये।	परलोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है,
समझी जाती है। प्राचीनकालमें प्रातः उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमं सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको तहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय बनी हुई हैं। अज तो स्थित इतनी विषय बनी हुई हैं। अज तो स्थित इतनी विषय करने छैरावे कर बैठते हैं। उनके वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको शिहनुमानप्रसादजी पोहारके ये विचार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रविषय समझता था। आका सकत बैठते हैं। दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रविषय समझता था। आजके सम्वन्धों हमारे परमश्रद्धेय भाईज क्रात्र स्वत्र करनेमें ही अपनी श्रीहनुमानप्रसादजी पोहारके ये विचार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रविष्य समझता था। आजक समझता था। आजक सम्वन्धों हमारे परमश्रद्धेय भाईज क्रात्र सहयोग सहयोग सम्वन्धों हमारे परमश्रद्धेय भाईज क्रात्र सामको हो सहयोग सहयोग सहयोग सहयोग सहयोग सहयोग सहयोग सहयो हो सहयोग सम्वन्धों हमारे परमश्रद्धेय भाईज क्रात्र सहयोग सहयोग तिक सहयोग हमारे विचार विशेषरूप मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार रविष्य सम्वन्धों समस्वन सहयोग सहयोग स्वत्र से विचार विशेषरूप सम्वन्धों सहयोग सहयोग स्वत्र से त्या सम्वन्धों सहयोग स्वत्र से त्या सम्वन्धों सहयोग सहयोग स्वत्र स्वत्र सम्वन्धों सहयोग सम्वन्धि सम्वन्धि सम्वन्धों सहयोग सम्वन्धों सम्वन्धों सम्	संतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे	ऐसे धर्मगुरुओंके प्रति भी आदर और श्रद्धाकी कमी
प्राचीनकालमें प्रातः उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसं करान, उनको आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसं सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक कर्योक अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजंक अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका प्रताक करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको तहार रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं और कुलपितयोंतकका घराव कर बैठते हैं। उनके विचार समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोहारके ये विचार विशेषरूप पन्नियाँ ती अपनी श्रीहनुमानप्रसादजी पोहारके ये विचार विशेषरूप पन्नियाँ स्थित उत्तजना पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तजना प्रत्येक द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार विद्यार करनेयार विद्यार कर बैठते हैं। उत्तजना पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तजना प्रताक करनेयार विद्यार विद्यार करनेयार विद्यार विद्यार करनेयार विद्यार विद्	प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात	बहुत ही खटकनेवाली है।
करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने सहयोगपर आधारित एवं निर्भर है। अत: प्रत्येक व्यक्ति अपनो सेकाचेका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त ह जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। प्रत्येक रानेसे होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा होता है, जो बच्चोंको हि कि विद्यार्थी अध्यापकों और अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं जोर कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके वच्चोंको निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघरते हैं। वे विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना भननीय हैं— और अवशिमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उत्तेजना भननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उत्तेजना भननीय हैं—	समझी जाती है।	इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमारे
सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक क्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदिधकारी हो जानेपर अपने लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरेंचे साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका पतिका दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका अपनेमें कृतज्ञताके सट्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकसि समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंके उपकारक नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी विषय कर बैठते हैं। उनके वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें हो अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज क्यान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारक ये विचार विशेषरूप मननीय हैं— ज्ञीर आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। उनके तम्हान सहायते हिन सम्वन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज श्रीह आवेशमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना पंदूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार ये व्यविस्त स्वर्ग पेतान सम्वन्ध हैं स्वर्ग पेतान सम्वन्ध सम्यन स्वर्ग पेतान सम्यन्ध हैं स्वर्ग प्रतिक्र सम्यन्ध सम्यन्य सम्यन्ध सम्यन्ध सम्यन्ध सम्यन्ध सम्यन	प्राचीनकालमें प्रात: उठते ही माता-पिताको नमस्कार	कितने उपकार किये हैं ? किसीने आर्थिक सहयोग दिया,
व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरों साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- सहयोगपर आधारित एवं निर्भर है। अत: प्रत्येक व्यक्तिव पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका अपनेमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरीत्तर विकसि समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त ह जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, प्रत्युपकारको जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको क्याहित्य वर्षो गुरुकनोंके प्रति आदरका भाव तरेषे गुरुकनोंके प्रति आदरका भाव तरेषे गुरुकनोंके कहानियाँ तो आज सर्वत्र व्यक्ति कृतघ्नत हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्नत हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतच्याहित्य हो जोते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्नत हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतच्याहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज कृतज्ञताके सम्बन्धमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार र	करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे	किसीने सत्परामर्श दिया, सद्बुद्धि दी तथा किसीने
अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरों साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- पतिवाको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका अपनेमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकसि समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त ह जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, प्रत्युपकारकी कामना सबके सिक्युपकारकी कामना सबके प्रत्युपकारकी कामना सबके सिक्युपकारकी कामना सबके प्रत्युपकारकी कामना सबके प्रत्युपकारकी कामना सबके प्रत्युपका	सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक	रुग्णावस्था और कष्टके समय सेवा-सहायता की। इस
साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता- पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्यात ह जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंके उपकारक नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र होंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी विषय कि मुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और अरोस्के उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा–अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा–सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो जेते समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप मुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक–सा भी उपकार य	व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके	प्रकार हमपर हुए उपकारोंका सही या पूरा लेखा-जोखा
पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका अपनेमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकसि समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप ह ज्ञायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, प्रहें तो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा अष्टर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक देकर उनके जीवनकी सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान दें भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत हिं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र दहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघन्त्र हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और अरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज कृतच्ताको हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप मुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं—	अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने	लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरोंके
समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त हैं 'सपूतों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय? जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंके उपकारक को व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत हिं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज श्रीहनुमानप्रसादजी पोह्नरके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— अरेर आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-	सहयोगपर आधारित एवं निर्भर है। अत: प्रत्येक व्यक्तिको
समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त हैं 'सपूतों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय? जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है। तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंके उपकारक को व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत हिं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज श्रीहनुमानप्रसादजी पोह्नरके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— अरेर आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका	अपनेमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकसित
तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, पर होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान दें भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज कुतज्ञताके कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं—	समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे	करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त हो
तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, पर होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान दें भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज कुतज्ञताके कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं—	'सपूतों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय?	-
होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारक देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान दें भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थित इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं—	तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका	प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, पर
सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान दें भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा	आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारको
भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें	स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके
भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृत नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको	उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान देंगे
नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूस चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक् विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा–अधिकारियोंतकको मार–पीट देते हैं परोपकार, सेवा–सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज्ञ शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक–सा भी उपकार य	भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव	तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृतज्ञ
चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी व्यक्ति कृतेष्ट्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनक् विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज् शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य		रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूसरे
विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहार सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज्ञ शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी	व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनकी
सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं हो और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज् शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	-	•
और कुलपितयोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके देना चाहिये। वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज् शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	_	_
वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईज शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तिनक-सा भी उपकार य	और कुलपतियोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके	-
शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूप नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार य	वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी	कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईजी
नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना मननीय हैं— और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक–सा भी उपकार य	शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको	थ्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके ये विचार विशेषरूपसे
और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। 'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक–सा भी उपकार य	नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना	मननीय हैं—
«`	· .	'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक–सा भी उपकार या
	यह स्थिति बड़ी ही भयानक एवं लज्जाजनक है।	भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदयसे
	·	उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो; यह मत समझो
	•	कि 'यह काम मेरे प्रारब्धसे हुआ है, इसमें उसका मेरे

भाग ९२

ऊपर क्या उपकार है; वह तो निमित्तमात्र है।' बल्कि उत्पन्न होगी, सहानुभृति और सेवाके भाव बढेंगे। याद रखो—उपकार या सेवा करनेवालेके प्रति यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुमपर बड़ी ही दया

की है। उसके उपकारको जीवनभर स्मरण रखो, स्थिति कृतज्ञ होकर मनुष्य जगतुकी एक बडी सेवा करता है;

क्योंकि इससे उपकार करनेवालेके चित्तको सुख पहुँचता बदल जानेपर उसे भूल न जाओ और सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो, काम है, उसका उत्साह बढ़ जाता है और उसके मनमें उपकार

पडनेपर हजारों आदिमयोंके सामने भी उसका उपकार या सेवा करनेकी भावना और भी प्रबल हो उठती है।

स्वीकार करनेमें संकोच न करो। ऐसा करनेसे परस्पर कृतज्ञके प्रति परमात्माकी प्रसन्नता और कृतघ्नके प्रति

प्रेम बढेगा, आनन्द और शान्तिकी वृद्धि होगी, लोगोंमें कोप होता है। इससे कृतज्ञ बनो और उपकारीके उपकारोंको कभी न भूलो।' ('आनन्दकी लहरें') दूसरोंको सुख पहुँचानेकी प्रवृत्ति और इच्छा अधिकाधिक

—— संतकी सहनशीलता प्रेरक-प्रसंग—

एक महात्मा जंगलमें कृटिया बनाकर एकान्तमें रहते थे। उनके अक्रोध, क्षमा, शान्ति, निर्मोहिता आदि

गुणोंकी ख्याति दूर-दूरतक फैली हुई थी। मनुष्य पर-गुण-असिहष्णु होता है। उनकी शान्ति भंग करके क्रोध

दिलाया जाय-इसकी होड़ लगी। दो मनुष्योंने इसका बीड़ा लिया। वे महात्माकी कृटियापर गये। एकने कहा—'महाराज! जरा गाँजेकी चिलम तो लाइये।' महात्मा बोले—'भाई! मैं गाँजा नहीं पीता।' उसने फिर

कहा—'अच्छा तो तमाखू लाओ।' महात्माने कहा—'मैंने कभी तमाखूका व्यवहार नहीं किया।' उसने कहा—'तब बाबा बनकर जंगलमें क्यों बैठा है? धूर्त कहींका।' इतनेमें पूर्व योजनाके अनुसार बहुत-से

लोग वहाँ जमा हो गये। उस आदमीने सबको सुनाकर फिर कहा—'पूरा ठग है, चार बार तो जेलकी हवा

खा चुका है।' उसके दूसरे साथीने कहा—'अरे भाई! मैं खूब जानता हूँ, मैं साथ ही तो था। जेलमें इसने मुझको डण्डोंसे मारा था, ये देखो उसके निशान। रातको रामजनियोंके साथ रहता है, दिनमें बड़ा संत बन

जाता है।' यों वे दोनों एक-से-एक बढ़कर—झुठे आरोप लगाने लगे, कैसे ही महात्माको क्रोध आ जाय, अन्तमें महात्माके माता-पिताको, उनके साधनको तथा वेशको भी गाली बकने लगे। बकते-बकते सारा

भण्डार खाली हो गया। वे चुप हो गये। तब महात्माने शक्करकी पुड़िया आगे रखकर हँसकर कहा— 'भैया! थक गये होगे, एक भक्तने शक्करकी पुड़िया दी है, इसे जरा पानीमें डालकर पी लो।'

वह मनुष्य महात्माके चरणोंपर पड़ गया और बोला—'मुझे क्षमा कीजिये महाराज! मैंने आपका बड़ा अपराध किया है। हमलोगोंके इतना करनेपर भी महाराज! आपको क्रोध कैसे नहीं आया?'

महात्मा बोले—'भैया! जिसके पास जो माल होता है, वह उसीको दिखाता है। यह तो ग्राहककी इच्छा है कि उसे ले या न ले। तुम्हारे पास जो माल था, तुमने वही दिखाया, इसमें तुम्हारा क्या दोष है, परंतु

मुझे तुम्हारा यह माल पसन्द नहीं है।' दोनों लिज्जित हो गये। तब महात्माने फिर कहा—'दूसरा आदमी गलती करे और हम अपने अन्दर

आग जला दें, यह तो उचित नहीं है। मेरे गुरुजीने मुझे यह सिखाया है कि क्रोध करना और अपने वदनपर छुरी मारना बराबर है। ईर्ष्या करना और जहर पीना बराबर है। दूसरोंकी दी हुई गालियाँ और दुष्ट व्यवहार

हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकते।'

यह सुनकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए और महात्माको प्रणाम करके चले गये।

केवल भगवान् ही अपने हैं संख्या ९] केवल भगवान् ही अपने हैं साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) अनुभव कर लेना चाहिये। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। जिस शरीरको हम अपना मानते हैं, क्या उसे मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ अपने इच्छानुसार रख सकते हैं? क्या उसे बीमार (गीता १५।७) 'इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है नहीं होने देंगे? क्या उसे मरने नहीं देंगे? क्या उसे और वही प्रकृतिमें स्थित मनसहित इन छ: इन्द्रियोंको कमजोर नहीं होने देंगे? यदि यह सब अपने वशकी आकृष्ट करता है।' बात नहीं है तो फिर हम शरीरको अपना कैसे मानते भगवान्ने जीवात्माको तो अपना अंश बतलाया है हैं? यदि हम शरीरको अपने इच्छानुसार बदल नहीं और मनसहित छ: इन्द्रियोंको प्रकृतिमें स्थित अर्थात् सकते तो फिर इसे अपना मानना ही छोड़ देना प्रकृतिका अंश बतलाया है। जीवात्मा अपने अंशी चाहिये? जिसपर हमारा आधिपत्य न चल सके, उसे भगवान्में ही स्थित है, परंतु वह अपने आपको प्रकृतिमें अपना मानना भूल ही है। अपने तो केवल भगवान् स्थित मान लेता है—'पुरुष: प्रकृतिस्थो हि' (गीता ही हैं। हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे हैं। १३।२०) अर्थात् मन एवं इन्द्रियोंके साथ एकताकर यह शरीर संसारका है और संसार शरीरका है। हम स्वयं सुख-दु:खोंके भोगनेमें हेतु बन जाता है-और भगवान् एक जातिके (अविनाशी) हैं और शरीर पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥ तथा संसार एक जातिके (विनाशी) हैं। इस प्रकार भगवान्को अपना माननेमें कोई परतन्त्र, अयोग्य, निर्बल (गीता १३।२०) यदि जीवात्मा प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध (जो और अनिधकारी नहीं है। केवल माना हुआ है) न माने तो उसे महान् आनन्दकी यदि आप कहें कि हमारे पूर्वकृत पाप बहुत हैं तो प्राप्ति (जो स्वत: है उस)-का अनुभव हो जाय; कोई बात नहीं। आप चाहे जैसे भी हों, पर भगवान्को तो अपना मान ही सकते हैं। क्या कुपुत्र माँको अपनी क्योंकि महान् आनन्दपर जीवात्माका जन्मसिद्ध अधिकार है। वस्तुत: यह अधिकार जन्मसे भी पहलेका है— नहीं मानता? अतएव भगवान्को अपना माननेमें प्रत्येक अर्थात् सदासे है और सदा रहेगा। मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है। भगवान्के अतिरिक्त किसी दूसरेको अपना माननेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। जिसे आप ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ अपनी माँ मानते हैं, वह किसी दूसरेकी बहन भी होगी, (रा०च०मा० ७।११७।२) जीव इस महान् आनन्दसे विमुख हुआ है, दूर बेटी भी होगी और इसी प्रकार उसके पत्नी, चाची आदि नहीं हुआ है। इस महान् आनन्दकी उसे विस्मृति हो कितने ही अन्य सम्बन्ध होंगे, जिनकी आप गिनती भी गयी है। अतएव यदि आपको उस महान् आनन्दका न कर सकें। इतने सम्बन्धोंके बीच आप उसे अपनी माँ अनुभव नहीं हो रहा है तो आपको उसके लिये ही मानते हैं। भगवान्का भी अनेकोंके साथ सम्बन्ध है, प्रकृतिसे अपना सम्बन्ध छोड़ देना होगा। कैसे छोड़े? पर वह पूर्णत: स्वकीय सम्बन्ध है। सभी भगवान्के अंश हैं और सभीका भगवान्के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध मन, इन्द्रियाँ, शरीरादिको अपना नहीं मानें। ये सब है। संसारके साथ सम्बन्ध तो केवल चिपकाया हुआ है। प्रकृतिके हैं और इन्हें अपना मान लेना ही इन्हें खींचना या आकर्षित करना है। इसका तात्पर्य यह यह शरीर माँकी कोखसे पैदा हुआ और माँने इसका है कि यदि हम इन्हें अपना मानेंगे तो जहाँ जायँगे पालन-पोषण किया, तब वह माँ कही गयी। इस प्रकार वहीं ये भी साथ जायँगे। इनसे छुटकारा नहीं हो यह माँ तो बनी हुई है, परंतु भगवान् सदासे अपने ही पायेगा। अतएव ये अपने नहीं हैं—ऐसा अच्छी तरहसे हैं। भगवानुको हरेक मनुष्य अपना मान सकता है, परंतु

आपकी माँको हरेक मनुष्य अपनी माँ नहीं मान सकता। नहीं सकता। केवल आप ही भगवानुसे विमुख हुए हैं। सभी मनुष्य भगवानुको चाहे जिस सम्बन्धसे पुकार अतएव आपको भगवानुके सम्मुख हो जाना है कि 'मैं सकते हैं। गोस्वामीजी भगवान्के प्रति कहते हैं-भगवान्का हूँ; किंतु शरीर आदिको अपना नहीं मानना तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै। है। ये अपने हैं ही नहीं। यदि भगवान्को अपना मानोगे तो निहाल हो जाओगे, बादमें कभी किंचिन्मात्र भी दु:ख ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥ नहीं पाना पड़ेगा, प्रत्युत स्वतः सिद्ध, अपार, अनन्त (विनय-पत्रिका ७९) स्वयं भगवान् कहते हैं-आनन्द-ही-आनन्द रहेगा। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे हैं-इन दोनों सम्बन्धोंमें भी 'हम भगवान्के हैं' यह भाव-सम्बन्ध (गीता ४।११) अधिक ऊँचा है; क्योंकि 'भगवान् हमारे हैं' इस भावमें 'जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।' आप संसारमें चाहे जैसा भी सम्बन्ध भगवानुपर अधिकार हो सकता है कि भगवानुको ऐसा जोड लें, कोई भी ऐसी घोषणा नहीं कर सकता कि 'तुम करना चाहिये और न करनेपर खिन्नता भी हो सकती हमें जैसा मानोगे, हम भी तुम्हें वैसा ही मानेंगे।' यदि है। अतएव भगवानुको क्या करना चाहिये, इसे वे ही कोई मानेगा भी तो वह आपको नहीं मानेगा। आपके जानें, हमें तो केवल इतना ही जानना है कि 'हम उनके पास धन है, ऊँचा पद है, उसके नाते आपको अपना हैं।' ऐसा माननेपर भगवान् जो विधान करें—सुखदायी मान लेगा। जब धन चला जायगा, पद छिन जायगा, तब या दुःखदायी, सब हमारे लिये प्रसन्नताका कारण होगा। आपको कोई अपना नहीं मानेगा। यदि आपके पास योग्यता, हम सदा आनन्दमें रहेंगे। यदि हम संसारके साथ अपनापनका सम्बन्ध तोड़ दें अधिकार, बल, विद्या आदि नहीं होंगे और आपके पास किसीकी आशा-पूर्तिकी सामग्री नहीं होगी, तो आपको तो फिर कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। भगवान्के साथ सदासे कोई अपना नहीं मानेगा। मरनेके बाद सम्बन्धी लोग शरीरको जो घनिष्ठ एवं अट्ट सम्बन्ध है, वह स्वत: प्रकट हो जला देते हैं: क्योंकि वे जानते हैं कि अब यह किसी जायगा। कोई अत्यन्त निर्धन, अनपढ़, नीच, पापी एवं कामका नहीं रहा। इससे अब कोई मतलब सिद्ध नहीं अयोग्य कैसा भी क्यों न हो, आवश्यकता है अनन्यतासे हो सकता। इस प्रकार संसारमें किसी-न-किसी स्वार्थसे प्रभुके प्रति समर्पित होने और यह माननेकी कि-ही दूसरे आपको अपना मानते हैं, परंतु भगवान् बिना मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। किसी मतलबके सदासे ही आपके अपने हैं। आपका उनके ऐसी अनन्य निष्ठा (दृढ्भाव) हो जानेपर फिर साथमें जो अपनापन है, वह कभी (त्रिकालमें) भी टूट आगेकी बात स्वत: बन जायगी। अनमोल बोल यदि तुमने ईश्वरको पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालोंसे दोस्ती करो। 🕯 ऊपर चढ़नेकी सीढ़ियाँ ये हैं— 🕏 सांसारिक पदार्थोंके पीछे दौड़ना छोड़ना। 🔅 सांसारिक विषयोंसे विरक्त होना। 🕸 परमात्मयोगके मार्गको पकडना। 🔅 निर्मलता और प्रभुप्रेम प्राप्त करना। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

भाग ९२

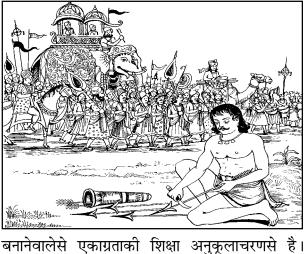
संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे) प्रकट जगत् ईश्वररूप है, अतः सारा जगत् गुरु है,

संत-वचनामृत

🛊 अनुकूल आचरणोंसे तथा प्रतिकूल आचरणोंसे— दोनोंसे दत्तात्रेयजीने शिक्षा ली। मधुमक्खी संग्रहसे नष्ट

होती है, यह प्रतिकूल आचरणसे शिक्षा ग्रहण है। बाण

संख्या ९]



तात्पर्य यह कि शिक्षाग्राही सर्वत्र शिक्षा लेता है और गुरुभावको भी रखता है। गुरुओंमें पिंगला आदिकी

गणना हुई और दत्तभगवान्ने सर्वत्र अपनी श्रद्धा रखी। 🛊 गुरु पूर्णिमापर हम लोग सद्गुरुदेवके पुज्य श्रीचरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं। यदि स्वयं

जगद्गुरु श्रीकृष्ण गुरुरूपसे मार्गदर्शन न करें तो श्रीकृष्णकी ओर कोई जा ही नहीं सकता है। मानव, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, वृक्ष, नदी, पंचभूत आदि सारे संसारके सभी

स्वरूपोंके द्वारा या उनमें प्रवेश करके अपनी प्राप्तिका उपाय श्रीकृष्ण ही बताते हैं। अनेक प्रकारसे जीवको अपने भक्तको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, तब कोई

नाम-रूपादि साधनोंको अपनाकर प्रभुकी ओर चल सकता है तथा प्रभुको प्राप्त कर सकता है। इसलिये ही प्रभु श्रीकृष्णको जगद्गुरु कहा जाता है। सम्पूर्ण जगत्के

कल्याणके लिये उपदेश देते हैं, अत: जगद्गुरु हैं। 🔹 गुरु अर्थात् भारी, सबसे बड़ा। एक तत्त्व जगत्में

श्रीकृष्ण ही हैं। जगत्में सबसे गम्भीर गुरुत्व श्रीकृष्णमें है, अत: वे जगद्गुरु सच्चे हैं। अन्य जगत् मायिक है, उसमें लघुत्व है गुरुत्व नहीं है। भक्तकी दृष्टिमें ईश्वरसे

श्रीकृष्ण है। सारा जगत् श्रीकृष्णकी सता-महत्ताका, तत्त्वका, प्राप्तिका उपदेश देता है, अत: जगद्गुरु है। जगत् श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं है।

🕏 श्रीविवेकानन्दजीका नाम नरेन्द्र था, पुरे नास्तिक थे। वे कहते थे कि पत्थरकी जड़ मूर्तियोंमें चैतन्य आत्माको लगानेसे क्या लाभ ? श्रीरामकृष्णदेव परमहंसको

पागलको। जब परमहंसजीके पास आये तो उन्होंने कहा—क्यों नरेन्द्र! तुम इतनी देरसे आये? नरेन्द्रके मनमें आया कि इन्हें मेरे नामका पता कैसे चला? इन्होंने कहा कि पत्थरकी मूर्तिके सामने माँ-माँ-माँ करनेसे क्या

पागल समझते थे। किसी दिन मनमें आया कि देखें उस

लाभ ? परमहंसजीने कहा—बेटा! ये साक्षात् माता हैं। प्यार करती हैं, बातचीत करती हैं। कृपा करके परमहंसने कहा—तुम माताजीके सामने बैठो, ध्यान लगाकर माँ-माँ पुकारो। नरेन्द्रने ऐसा ही किया। परमहंसजीने

प्रार्थनापर माताने ध्यानमें दर्शन दिया, सिरपर हाथ रखा। उसी क्षण नरेन्द्रके मनमें विवेककी जागृति हो गयी और गुरुचरणरजके सिरपर लगाते ही विवेकानन्द हो गये। हाय! हाय कर पछताने लगे कि गुरुचरणोंसे अलग रहकर इतना समय व्यर्थ गया।

माताजीसे कहा कि इस बालकपर दया करो। परमहंसकी

🔹 सेवा के लिये भगवान्की प्रतिमा है, पर प्रत्यक्ष सेवाके लिये अपने गुरुजन, पिता-माता हैं। वृद्धकी सेवा, गायकी सेवासे कृष्णभक्ति मिलती है। यदि पिता-माता,

संत, विप्र, वृद्ध, गाय आदिको कोई प्रसन्न कर ले तो समझो कि भगवानुको प्रसन्न कर लिया। 🖈 कलियुगमें श्रद्धा-भक्ति सुरक्षित रहे तो समझो प्रभुकी बड़ी कृपा है। हितकारी उपदेश देनेवाले सभी गुरु

हैं। एक गुरुजन मूक उपदेश देते हैं, उनके सदाचारसे शिक्षा मिलती है। वे बोलते नहीं हैं। नदी, वृक्ष, संत आदि मूक उपदेष्टा हैं। दत्तभगवान्ने सर्वत्र शिक्षा प्राप्त की थी। [परमार्थके पत्र-पुष्पसे साभार]

सात दिनका मेहमान कहानी-(पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार') —विचार करते-करते नागदत्त सेठ घर पहुँचे। (8) उज्जयिनीमें नागदत्त सेठका नाम देशविख्यात था। (२) नामके साथ दाम एवं व्यापारका काम भी दिनोंदिन बढ़ भोजन परोसती हुई नागदत्तकी पत्नी कह रही थी—'मजद्र लोग काम करते हैं, महल भी अब प्राय: रहा था। श्रीमानताके तीन चरण—नाम, दाम एवं पूरा बन चुका है, फिर भी आप वहीं खड़े रहकर इतना

कामकी वृद्धि होनेपर भी चौथे चरण धामकी कमी उन्हें

बेचैन बना रही थी। वैसे तो उनके रहनेका मकान बहुत अच्छा था, पर उसे महल नहीं कहा जा सकता था।

अभी-अभी नगरपतिने एक सुन्दर महालय बनवाया था। नागदत्त सेठ उनसे किस बातमें कम थे, जो एक विशाल

महल न बनायें? इस कार्यके लिये उन्होंने जयपुरके ख्यातनामा शिल्पियोंको बुलवाकर अच्छे-से-अच्छा महल बनवाया।

अब केवल उसमें रंगका काम ही बाकी था। चित्रकामके लिये भी देशके कुशल चित्रकार बुलाये गये थे। रंग-रौगन एवं चित्रकारीका काम चल रहा था। प्रात:कालका समय था। स्वयं नागदत्त चित्रकारोंको

सूचना दे रहे थे-'चित्रकार! देखना, ऐसी बढ़िया चित्रकलाका काम करना। चाहे जितना धन लग जाय, इसकी चिन्ता नहीं है; किंतु सात पीढ़ियोंतक रंग तथा चित्र ताजे बने रहें, ऐसा काम करना है। नागदत्त

आगे बोल ही रहे थे कि उसी मार्गसे मन्द-मन्द हँसते हुए एक मुनिराज निकले तथा उनको देखकर नागदत्तने अपनी बात पूरी किये बिना ही मुनिराजका वन्दन किया।

मुनिराज अपने हाथसे आशीर्वाद देते हुए नागदत्तकी

ओर देखकर मुसकराने लगे। मुनिराज अपूर्व ज्ञानी थे। भिक्षा लेनेके लिये ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा एक ही एकान्त स्थानमें बैठकर जप-ध्यानमें मग्न रहते थे।

ऐसे पहुँचे हुए मुनि आशीर्वाद देते-देते हँसे क्यों? नागदत्तको इस बातपर आश्चर्य हुआ। मुनिके जानेके बाद सेठ अपने घर आये। मार्गमें चलते-चलते भी नागदत्तके

मनमें यही विचार आ रहा था कि ऐसे प्रौढ़ मुनि मुझे

देखकर हैसने क्यों लगे? महलके निर्माणमें कोई त्रुटि

रह गयी होगी या चित्रकलामें कोई कसर होगी?

समय क्यों बिगाड़ते हैं ? आपको अपने स्वास्थ्यकी भी चिन्ता नहीं। भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं रहता। आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो है नहीं।'

'तुम चिन्ता न करो'—भोजन करते-करते नागदत्तने उत्तर दिया। 'अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-रौगन और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी

है। तुम नहीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना पूरा काम नहीं करते हैं।' सुनकर पत्नी मौन रह गयी। थोड़ी देरके बाद नागदत्तने भोजन करते-करते कहा—'सातवीं मंजिलपर

कलात्मक चन्दनका झूला बन चुका है। सोनेके कड़े भी तैयार हैं। उसी प्रकार हमारे प्यारे मुन्नेके लिये एक पलना बनानेका भी आर्डर दे दिया है। वह भी सोने-चाँदीका नक्काशीदार बनेगा।' 'मैं भी गृह-प्रवेश मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ।'

'मैं तो दुविधामें पड़ गया हूँ'—भोजन करते-करते नागदत्त बोले। 'ये पूडियाँ, कचौरी, पकौडियाँ, यह स्वादिष्ट श्रीखण्ड—इनकी प्रशंसा प्रथम करूँ या गुलाबके फूल-जैसे अपने मुन्नेकी?'

'आप भोजन कर रहे हैं और यह तो देख रहा है' मुन्नेको सेठकी गोदमें देती हुई पत्नी बोली। 'इसे भी दो ग्रास खिला दीजिये न?' सेठने दो वर्षके मुन्नेको अपनी गोदमें बैठाया और

सेठकी पत्नीने कहा। 'रसोई तो अच्छी बनी है न?'

िभाग ९२

खीर-पूड़ी का एक छोटा-सा ग्रास उस नन्हे मुन्नेको खिलाना आरम्भ किया। संयोगवश उसी समय बच्चेने लघुशंका कर दी ? थोड़े छींटे भोजनकी थालीमें भी पड़ गये।

संख्या ९] सात दिनव	का मेहमान २५
**************************************	*************************
'लो सँभालो अपने लालको।' पत्नीकी गोदमें	बकरा अवश्य छूट सकता था। सेठने एक दृष्टिसे
बच्चेको रखते हुए सेठने कहा। 'इसने तो मेरी धोती और	बकरेकी ओर देखा। बकरा थर्रा रहा था। उसका हृदय
थालीको भी बिगाड़ दिया।'	पुकार रहा था कि मुझे छुड़ा लो, मुझे छुड़ा लो।
—'तो इसमें क्या हुआ?' हँसते हुए पत्नीने उत्तर	परंतु दूसरी ओर सेठका लोभी मन पाँच मुद्रा देनेसे
दिया। 'बच्चा ही तो है, उसमें समझ थोड़े ही है?'	साफ इनकार कर रहा था। उन्होंने यह भी सोचा कि 'पाँच
—बात अधूरी-सी रह गयी, इतनेमें ही आँगनमेंसे	मुद्रा देनेपर यह कसाई हिंसाका कार्य थोड़े ही छोड़ देगा ?
सुनायी दिया—'धर्म लाभ [भिक्षां देहि]।'	अत: बकरेको वापस देकर पाँच मुद्राएँ बचा लेनी चाहिये।'
सेठने भोजन करते-करते मुनिराजको वन्दन किया,	दूकानके सभी लोग अपने–अपने काममें व्यस्त थे,
ठीक उसी समय मुनिराजने मन्द हास्य कर दिया। वह	अतः स्वयं सेठने खड़े होकर, बकरेका कान पकड़कर
भी पूर्ववत् हास्य! पत्नीने उठकर मुनिराजको भिक्षा दी	उस कसाईको सौंप दिया और कहा—'ले जा अपना यह
और मुनिराज लेकर चले गये।	माल; पाँच मुद्रा मुफ्तमें नहीं आती। इसके लिये तो
भोजन कर लेनेके बाद सेठ पान-सुपारी खाते-	पसीना ''''' नागदत्त आगे बोल ही रहे थे, किंतु इतनेमें
खाते विचार करने लगे—'ऐसे ज्ञानयोगी मुनिराज बिना	ही दूकानके नजदीकसे अकस्मात् मुनिराज जाते दिखलायी
कारण हँसते रहें, यह तो सम्भव नहीं है। एकान्तमें	दिये। मुनिराजको देखकर नागदत्तने वन्दन किया।
जाकर उनसे इस हँसीका कारण पूछना चाहिये।'	आशीर्वाद देते हुए मुनिराजने फिर मुसकरा दिया।
भोजनके बाद सेठ बिस्तरपर लेटे; परंतु मन चिन्ताग्रस्त	अब तो नागदत्तसे रहा न गया। दूकानसे नीचे
था, इस कारण आज नींद बिलकुल नहीं आयी।	उतरकर उन्होंने वन्दन करते हुए प्रश्न किया—'मुनिराज!
(ξ)	आज दिनभरमें आपके तीन बार दर्शन हुए; परंतु तीनों
सायंकाल चार बजेका समय हुआ। दो-एक दिनसे	ही बार आपने मेरे सामने देखकर मन्द हास्य किया—
सेठ दूकानपर नहीं जा सके थे। बँगलेका काम जो चल	कृपया बतलाइये इसका क्या रहस्य है? मुझसे कोई
रहा था; किंतु आज थोड़ी देरके लिये उन्होंने दूकानपर	अपराध हो गया है क्या?'
जानेका निश्चय किया।	'नागदत्त!' महात्माने गम्भीर होकर कहा। 'ऐसी
सेठ नागदत्तको दूकान मध्य बाजारमें थी। मुनीम	बातें सुननेमें अच्छी नहीं लगतीं। प्रभु-पथके पथिककोंके
लोग अपने-अपने काममें लगे थे। गद्दीपर बैठकर सेठ	लिये यह उचित भी नहीं है कि ऐसी बातोंमें जान-
हिसाब-किताब देख रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा	बूझकर प्रवेश करें।'
बकरा दूकानपर चढ़ आया। उसके पीछे दौड़ता हुआ एक	'मुझे दु:ख नहीं होगा महाराज!' नागदत्तके स्वरमें
कसाई भी वहाँ आ पहुँचा। कसाई और बकरा दोनोंपर	नम्रता थी। वे बोले—'आपके हास्यमें अवश्य ही कुछ
एक ही साथ सेठकी दृष्टि पड़ी। बकरा सेठके सामने कुछ	रहस्य है; अत: कृपया उस रहस्यको नि:संकोच कह दीजिये।'
आशाभरी दृष्टिसे देख रहा था, मानो वह मूकभावसे अपनेको	'बहुत अच्छा'—मुनिराज बोले।'आज सायंकालके
छुड़ानेके लिये प्रार्थना कर रहा हो। अत: सेठने कसाईसे	समय आप नदी-किनारे—एकान्तमें आइये, वहीं बातचीत
कहा—'इस बकरेको छोड़ दो; मैं तुम्हें एक मुहर दूँगा।'	करेंगे।'
'सेठ साहब!' कसाई बोला। 'जैसे आप व्यापारी	—कहकर मुनिराज विदा हो गये।
हैं, वैसे ही मैं भी एक तरहका व्यापारी ही हूँ। मुझे इस	(8)
बकरेकी कीमतमें पाँच मुद्रा सहजमें ही प्राप्त हो सकती	सायंकालका समय था। उज्जयिनीके देवालयोंके
है, अतः मुझे तो मेरा बकरा ही दे दो।'	घण्टारवोंसे समस्त आकाशमण्डल गूँज उठा। ठीक इसी
नागदत्तसेठ पाँच मुद्रा देना स्वीकार कर लेते, तो	समय नागदत्तने आकर मुनिराजके चरणोंमें वन्दन किया।

भाग ९२ नदी-किनारे सुरम्य वातावरणमें नागदत्तने प्रश्न किया— जार-पति था, जिसका अपनी पत्नीके साथ एकान्तमें देखकर तुमने घात किया था। मृत्युके बाद वही जीवात्मा तुम्हारी महात्मन्! मैं चित्रकारको सूचना दे रहा था, ठीक उसी समय आपने हास्य क्यों किया था?' पत्नीके उदरसे जन्म पाकर तुम्हारा अनिष्ट करनेको आया 'हाँ,' मुनिराज बोले। 'चित्रकारको आप किन है। तुम्हारी मृत्युके बाद वह महादुराचारी एवं दुर्व्यसनी शब्दोंमें सूचना दे रहे थे? याद है आपको?' बनकर तुम्हारे उस महल, तुम्हारी दूकान एवं प्रतिष्ठाको 'जी हाँ' नागदत्त बोले। 'मैं चित्रकारसे कह मिट्टीमें मिला देगा। जिस महलका रंग तुम सात पीढ़ीतक रहा था कि ऐसा चित्रकलाका काम करो जो सात कायम रखना चाहते हो, तुम्हारा यही पुत्र तुम्हारी सात पीढ़ीकी सारी प्रतिष्ठाको डुबो देगा। बस, इसी विचारसे पीढीतक अमिट रह सके।' दूसरी बार मुझे हँसी आ गयी थी।' 'सुनो नागदत्त!' मुनिराज बोले—'सात पीढ़ीपर्यन्त रंग तथा चित्रकारीको अमिट रखनेकी इच्छा करनेवालेको 'महाराज!' नागदत्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वे बोले—'में चारों ओरसे लुटा जा रहा हूँ। अब यह पता नहीं है कि वह स्वयं केवल सात दिनका मेहमान है।' मुझे कृपया यह भी बतलाइये कि दुकानके समीपसे निकलते इस स्पष्ट कथनसे नागदत्तके सारे अंग ढीले पड़ समय आपने तीसरी बार हास्य क्यों किया था?' गये! उनका स्वर बेसुरा बन गया। आँखें छलक उठीं! 'हाँ, यह भी सुन लो!' मुनिराज बोले। 'जिस कम्पित स्वरसे उन्होंने पूछा—'आप क्या सच कह रहे बकरेको तुमने पाँच मुद्राके लोभसे कसाईके हाथों सौंप हैं ? यदि ऐसी ही भावी हो, तो कृपया यह भी बतलाइये दिया, वह तुम्हारे मृत पिताजी थे और वह कसाई कि मेरी मृत्यु किस रोगसे होनेवाली है?' पूर्वजन्ममें एक गरीब किसान था। उसके मालके कम 'तो सुनो' महात्माजी बोले। 'यह पञ्चमहाभूतके पैसे देकर तुम्हारे पिताजीने उसका अपराध किया था। संघातरूप देह तो नश्वर है। इसका जन्म और मरण अतः उस पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये उसी किसानके किसीके वशकी बात नहीं है, यह कर्माधीन है— हाथसे उसे मरना पडा! 'देखो भाई!' थोडा रुककर महात्माजी बोले— देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः। देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥ 'यह संसार तो ऋणानुबन्धनसे ही बनता है, मोहान्ध ऐसे कर्माधीन देहको नित्य मानकर मिट्टी, पत्थर मानव अपने ही दोषसे इस जंजाल-जालमें फँस जाता और चुनेसे बने हुए मकानका रंग सात पीढीतक बने है। यह कालदेवकी माया है— रहनेकी आशा रखनेवालेके लिये कोई हँसे नहीं तो क्या संसारः सिन्धुरूपश्च मीनरूपाश्च मानवाः। करे ? आपकी मृत्यू भी कर्माधीन होकर आजसे सातवें जञ्जालो जालरूपश्च कालरूपश्च धीवरः॥ दिन मस्तकशूलके रोगद्वारा होगी।' अर्थात् 'इस अपार संसार-सागरमें मानव-प्राणी मत्स्यके समान है। वही मानवरूप मत्स्य अपने 'तो भगवन्!' नागदत्तने प्रश्न किया। 'दूसरी बार भिक्षा लेते समय भी आपने मन्द हास्य किया, उसका देहाभिमानद्वारा की हुई चतुराई—अहंता-ममतारूप जालको कारण भी मैं सुनना चाहता हूँ।' बनाता है और फिर उसी जंजालरूप जालमें कालरूप 'यह बात कहने-सुननेलायक नहीं थी।' महात्मा धीवर उसे पकड़ लेता है।' बोले— 'किंतु तुम्हारे आग्रहसे और तुम्हारे ही कल्याणके नागदत्तको अब सच्ची बात समझमें आ गयी। उन्होंने लिये कहना उचित समझता हूँ। देखो, जिस बालकको अपनी सम्पत्तिका दो तृतीयांश भाग धर्मकार्योंमें लगानेका तुम प्यारा मुन्ना मानकर गले लगाते हो और आज जिसके निश्चय कर लिया और अन्ततक स्मरण, सत्संग आदि मूत्रके छींटे लग जानेपर भी तुम उस भोजनको प्रेमसे खा करते हुए वे सातवें दिन मृत्युके वश हो गये। लेमे। कोव व्यक्तित्र च्याडिटराखा श्रव सूर्व नामा केंड महस्ते संतुर्वे त्या विकास | MADE William क्षेत्र क्

आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन संख्या ९] आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन (पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री) ज्ञाननिधि आद्य श्रीशंकराचार्य भगवान् शंकरके अवतार जाय। जगत्-जीव, ईश्वरादि और इनके सम्बन्धोंका विवेचन थे। उन्होंने समग्र सनातन-धर्म एवं शास्त्रोंका उद्धार किया, उपनिषदोंमें ही प्राप्त होता है। वेदव्यासप्रणीत 'ब्रह्मसूत्र' विशेषत: वेदके ज्ञानकाण्डका। उनका अपना कोई सिद्धान्त उपनिषदोंकी ही व्याख्या है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' आदि सभी या मत न था। वे अद्वैतवादके प्रवक्तामात्र थे। वस्तुत: ग्रन्थ उपनिषदोंपर ही आधृत हैं। आचार्य श्रीशंकरने इन 'शांकर–सिद्धान्त', 'सनातन–वैदिक–सिद्धान्त' है। उसका सभी ग्रन्थोंपर भाष्य लिखे। लक्ष्य अखण्ड, अनन्त, त्रिकालाबाधित, परमानन्दस्वरूप, परम तत्त्व एक ही है। उसीमें अनेकताकी भ्रान्ति हो रही है। भ्रान्तिका कारण है—परमतत्त्वका अज्ञान। मोक्षप्राप्ति या मोक्षस्वरूप परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति है। परमात्मासे अभिन्नता प्राप्त करना ही मोक्ष है। परब्रह्म ज्ञानद्वारा अज्ञान-निवारण होनेपर अनेकताकी भ्रान्ति परमात्मा निराकार, निर्विकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप निवृत्त हो जाती है। उस स्थितिमें आकाशवत् अखण्ड, है और वही समस्त प्राणिमात्रका आत्मा है। समस्त प्राणी एक परम तत्त्वानुभूति होती है। तब मानव राग-द्वेष, अज्ञानवश अपने स्वरूपको नहीं जानते। ज्ञानद्वारा अज्ञान-मानापमान, जन्म-मृत्यु, लाभालाभ, बन्ध-मोक्षादि द्वन्द्वोंसे ऊपर हो जाता है। आचार्य श्रीशंकर इसी स्थितिमें थे। निवारण होनेपर हाथमें रखे पदार्थके समान अभिन्न आत्मस्वरूपका दर्शन होने लगता है। उनका न कोई अपना था न पराया, न उनमें राग था न किसी भी पदार्थका ज्ञान प्रमाणके अधीन है। जैसे द्वेष, न नीचकी कल्पना थी न उच्चकी; पूर्ण साम्यावस्था लाल-पीला-हरा, वृक्ष, नद-नदी, स्त्री-पुरुष आदिके थी उनमें, उनके हृदयमें करुणा-स्रोत प्रवाहित होता था। रूपका ज्ञान नेत्रके अधीन है। रूप-ज्ञानमें नेत्र ही प्रमाण इसी कारण वे वेदानुकूल सदुपदेशमें प्रवृत्त रहे। उस है। वैसे ही प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थसे परे ब्रह्मात्मज्ञानके समय वेद-विरुद्ध अनेक विद्वानोंद्वारा अनेक मत-मतान्तर लिये वेद ही प्रमाण है। किसी भी तर्क या विज्ञानद्वारा प्रचलित हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर आचार्यने उसका ज्ञान सम्भव नहीं; क्योंकि तर्क या विज्ञानकी सत्पथका उपदेश किया और वेदविरुद्ध मत-मतान्तरोंकी सीमा प्रकृतिपर्यन्त है। इसी कारण शास्त्रोंमें कहा है-नि:सारता दिखलायी। कुछ विद्वान् कह सकते हैं-'उन्हें उपदेशमात्र करना चाहिये था, किसी अन्यका

अतीन्द्रियार्थे धर्मादौ शिवे परमकारणे। श्रुतिरेव सदा मानं स्मृतिस्तदनुसारिणी॥ (सूतसंहिता ८।१९) 'अतीन्द्रिय पदार्थ, धर्माधर्म तथा परकारण शिवमें

सदैव श्रुति ही प्रमाण है, श्रुतिका अनुसरण करनेवाली स्मृति भी प्रमाण है।' इसी कारण आस्तिकजन वेद तथा वेदानुकूल शास्त्र-प्रमाण मानते हैं। आद्य श्रीशंकराचार्यने जो भी कहा, वह श्रुति-प्रमाणानुसार ही कहा। अद्वैत ज्ञानतत्त्वका प्रतिपादन मुख्यत: वेदके अन्तिम भाग 'उपनिषद्' में हुआ है। जैसे शरीरमें ज्ञानका मुख्यत: केन्द्र सिर है, वैसे ही उपनिषद् वेदके शीर्षस्थानीय हैं। केन्द्रसे ही शाखा-

वेदसे पृथक कर दिये जायँ तो शेष भाग ज्ञानशून्य शेष रह

खण्डन नहीं करना चाहिये था। खण्डन करनेसे ज्ञात होता है कि उनमें भी राग-द्वेष था।' किंतु ऐसा कथन ठीक नहीं है। स्वयं आचार्यने यही प्रश्न उपस्थितकर इसका समाधान किया है। 'ब्रह्मसूत्र' (अ० २ पा० २ सू० १ प्र०)-के भाष्यमें उनका कथन है—

'ननु मुमुक्षुणां मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शननिरूपणाय स्वपक्षस्थापनमेव केवलं कर्तुं युक्तम्, किं परपक्षनिराकरणेन परविद्वेषकारणेन। बाढमेवम्, तथापि महाजनपरिगृहीतानि महान्ति सांख्यादितन्त्राणि सम्यग्दर्शनापदेशेन प्रवृत्तान्युपलभ्य

भवेत् केषाचिन्मदमन्तीनामेतान्यपि सम्यग्दर्शनायोपादेया-प्रशाखाओंका संचालन तथा संजीवन होता है। यदि उपनिषद् नीत्यपेक्षा। तथा युक्तिगाढत्वसम्भवेन सर्वज्ञभाषितत्वाच्य श्रद्धा च तेषु इत्यतस्तदसारतोपपादनाय प्रयत्यते।'

भाग ९२ ******************* ******************** मुमुक्षु पुरुषोंके लिये तो मोक्ष-प्राप्तिके साधनरूपभूत निकालता, शरीर कालद्वारा एक दिन अवश्य नष्ट होगा। सम्यग्ज्ञान निरूपण करनेके लिये अपना पक्षस्थापनमात्र यदि दूसरेके कार्य-सिद्धिमें इसका उपयोग हो तो इससे ही करना युक्त है, परपक्षसे द्वेष करने-परपक्षके बढकर और क्या पुरुषार्थ होगा? मैं एकान्तमें समाधि लगाता हूँ। उस समय आकर तुम मेरा सिर ले लेना। निराकरण-खण्डन करनेसे क्या प्रयोजन? (अब इसका उत्तर देते हैं) यद्यपि आपका यह कथन यथोचित है, योगिन्! यदि चिन्तित कार्यको हमारे शिष्य जान लेंगे, तथापि सांख्यादि शास्त्र सज्जनोंद्वारा परिगृहीत—स्वीकृत तो इसे कभी भी होने न देंगे; क्योंकि वे एकमात्र मेरी हैं और वे सम्यग्ज्ञाननिरूपणके व्याजसे प्रवृत्त हुए हैं। शरण हैं। कौन अपने शरीरको त्यागनेके लिये प्रस्तुत उनको प्राप्तकर अनेक मन्दमितयोंकी यह धारणा हो कि होगा और कौन अपने स्वामीको शरीर त्यागने देगा?' 'यह शास्त्र ही सम्यग्ज्ञानके लिये ग्राह्य है। उनमें दृढ् शिष्या वदन्ति यदि चिन्तितकार्यमेतद् युक्तियोंका होना भी सम्भव है और वे सर्वज्ञद्वारा कथित योगिन्मदेकशरणा विहतिं विदध्युः। हैं, अतः उनमें मन्दमितयोंकी श्रद्धा भी हो सकती है। को वा सहेत वपुरेतदपोहितुं स्वं इसलिये वे शास्त्र असार हैं—यह उपपादन करनेके लिये को वा क्षमेत निजनाथशरीरमोक्षम्॥ प्रयत्न किया जाता है।' अत: तत्त्व-निर्णयकी इच्छासे (शंकरदिग्विजय ११।२८) परपक्ष-खण्डन द्वेष नहीं है। शिष्यगण दूर स्नानादि कार्यके लिये गये थे। आचार्य अतीव उदारमना और शरीराध्यासशून्य आचार्य एकान्तमें समासीन थे। उसी समय हाथमें त्रिशूल, थे। एक बार वे 'श्रीशैल' गये। मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगके गलेमें अस्थिमाला तथा मदिरासे घूर्णित नेत्रोंको घुमाता दर्शनकर वे 'कृष्णा'-नदीके तटपर निवास करने लगे। कापालिक आ पहुँचा। भैरवाकार कापालिकको देखकर वहीं एकान्त समय देखकर एक 'कापालिक' आचार्यके आचार्यने शरीर-त्यागका निश्चय किया। उन्होंने इन्द्रियोंको समीप आया। उसने कपटपूर्वक अतीव नम्रतासे प्रार्थना उनके व्यापारसे निवारणकर अन्त:करणमें लीन किया। की और अपना मनोरथ प्रकट किया—'इस समय फिर अन्त:करणको आत्मामें और आत्माको ब्रह्ममें लीन संसारमें मोहशून्य, देहाभिमानरहित और अद्वैतवाद सिद्ध कर दिया। कापालिकने भी सिर काटनेके लिये हाथमें करनेवाले एकमात्र आप ही हैं। आपका शरीर परोपकारके खड्ग ले लिया। आचार्यके शिष्य पद्मपाद कहीं अन्यत्र लिये है। जो आपके समीप मनोरथ लेकर आता है, वह ध्यानस्थ थे। उन्होंने ध्यानमें ही देखा कि गुरुजीको कापालिक मारने जा रहा है। वे गुरुके अतीव हितैषी कभी निराश होकर नहीं जाता। मेरी कामना है, इसी थे। उनके शरीरमें नृसिंहका आवेश हुआ और वे वेगपूर्वक शरीरसे कैलास जाकर वहाँ शिवके साथ रमण करनेकी। चलते हुए उस स्थानपर पहुँचकर कापालिकके ऊपर कूद इसके लिये मैंने भगवान् शिवकी तीव्र तपस्या की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'इसके लिये तुम किसी पड़े। वे उग्र नखोंसे कापालिकके वक्षःस्थलको विदीर्णकर सर्वज्ञका सिर या किसी राजाका सिर अग्निमें हवन भयंकर अट्टहास करने लगे। उच्च निनाद सुनकर अन्य करो।' अभीतक मुझे न किसी राजाका सिर मिला, न शिष्य भी वहाँ आ गये। आचार्य पूर्ववत् समाधिस्थ थे। सर्वज्ञका। राजाका सिर पाना मेरे लिये असम्भव है। और कुछ कालके पश्चात् आचार्यकी समाधि टूटी। उन्होंने कापालिकको मरा पड़ा देखा। आप इस प्रकार समदर्शी, आपसे बढ़कर सर्वज्ञ कोई नहीं है। अत: आप अपना सिर मुझे दें, इससे आपकी कीर्ति होगी और मेरा मनोरथ उदार, राग-द्वेषशून्य तथा शरीराभिमानरहित थे। आचार्य वेदोक्त कर्म, उपासना तथा ज्ञानका प्रतिपादन सिद्ध होगा। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' यह कहकर वह साष्टांग प्रणाम करने लगा। करते थे। किंतु मोक्ष एकमात्र ज्ञानसे ही होता है और यही आचार्यने कहा—'मैं तुम्हारे वचनोंमें दोष नहीं वेदका परम तात्पर्य है—ऐसी उनकी मान्यता थी और यह

संख्या ९] आचार्य श्रीशंकरके श्रं	ोचरणोंमें श्रद्धा-सुमन २९
<u> </u>	<u> </u>
मान्यता श्रौत–प्रमाणसे भी सिद्ध है। उनका कथन है—	जलमें विद्यमान रहनेपर भी जैसे तुम्हें दिखायी नहीं देता,
न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।	वैसे ही) वह सत् भी संघातरूप शरीरमें विद्यमान रहते हुए
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यिति नान्यथा॥	तुम्हें दिखायी नहीं देता। 'तस्य तावदेव चिरं यावन
(विवेकचूडामणि ५८)	विमोक्ष्येऽथ सम्पतस्य इति' (छा॰उ॰ ६।१४।२),
'परमानन्दस्वरूप मोक्ष न तो योगसे सिद्ध होता है,	'उस आचार्यवान् पुरुषको मोक्षमें उतना ही विलम्ब है,
न सांख्यसे, न कर्मसे और न सगुणोपासनासे ही। वह	जितने कालतक शरीरपात नहीं होता'—यह 'फल' है।
तो एकमात्र ब्रह्म तथा आत्माके एकत्व–ज्ञानसे ही होता	'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' (छा०उ० ६।३।२)
है, अन्य किसी प्रकारसे नहीं।' ज्ञानसे ही मुक्ति मिलती	इस जीवात्मरूपसे प्रवेशकर आदि अद्वितीय ज्ञानार्थ
है। श्रुति भी कहती है—	'अर्थवाद' है। 'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टियष्यन्ति मानवाः।	विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥	सत्यम्' (छा०उ० ६।१।४) सौम्य! जैसे एक
(श्वेताश्व०उप० ६।२०)	मृत्तिकाके पिण्डद्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है;
जब मनुष्य अमूर्त तथा व्यापक आकाशको चमड़ेके	क्योंकि विकार केवल वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है,
समान लपेट लेंगे, तब स्वप्रकाश परमात्माको न जानकर	सत्य केवल मृत्तिका है' आदि दृष्टान्त उपपत्ति है।
भी दुःखका अन्त—मोक्ष हो सकेगा। परमात्माको	दृष्टान्तोंसे निश्चय होता है कि विकार प्रकृतिसे भिन्न नहीं
आत्मत्वेन जाननेसे ही मोक्ष होगा, अन्य कोई मार्ग नहीं है;	है। इस प्रकार उपक्रमादि छ: लिंगोंसे सभी वेदान्तोंमें
क्योंकि 'तत्त्वमिस' (छा०उ० ६।८।७) आदि	अद्वितीय ब्रह्मज्ञान होता है और यह प्रत्यगिभन्न ब्रह्म ही
महावाक्योंमे परमात्मा और जीवको एक ही बतलाया है।	सब वेदान्तोंका तात्पर्य है। मैं ब्रह्म ही हूँ, इस ज्ञानानुभूतिसे
श्रुति–तात्पर्य जाननेके लिये उपक्रम–उपसंहार, अभ्यास,	मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है—यह मोक्ष है।
अपूर्वता, फल, अर्थवाद तथा उपपत्ति—ये छ: लिंग हैं।	आचार्य शंकरने मुमुक्षु मनुष्योंके लिये ज्ञानका
'तत्त्वमिस' वाक्यका वास्तविक अर्थ क्या है? इसे	प्रतिपादन किया। किंतु जिनमें मुमुक्षुता नहीं है, उनके
उपर्युक्त नियमके अनुसार देखना चाहिये। छान्दोग्य	लिये शास्त्रोंने कर्मोपासना निर्दिष्ट की है। ईश्वरार्थ या
उपनिषद्में उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं—	निष्कामकर्म करनेसे जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तरके
'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा०उ०	वैषयिक राग-द्वेषात्मक संस्कारोंका प्रक्षालन होता है।
६।२।१)—'हे प्रियदर्शन! यह सब संसार सृष्टिके	अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। तब उसमें मोक्षकी
पूर्वकालमें सजातीय-विजातीय तथा स्वगतभेदशून्य एकमात्र	इच्छा उत्पन्न होती है। ईश्वरोपासनासे अन्त:करणकी
सद्-ब्रह्म ही था।' यह उपक्रम अद्वैत ब्रह्मका है।	चंचलताकी निवृत्ति होती है। तब प्रत्यगभिन्न ब्रह्ममें
'एतदात्म्यमिदः सर्वम्' (छा०उ० ६।८।७)—'यह	बुद्धिकी स्थिरता होती है। इस प्रकार मुमुक्षुता उत्पन्न
सब आत्मस्वरूप है'—इस उपसंहार-वाक्य और उपक्रम-	करनेके लिये कर्मोपासना अवश्यकर्तव्य है। पश्चात्
वाक्यकी एकता प्रथम लिंग है। 'तत्त्वमिस' (छा०उ०	ज्ञानोपदेशसे ब्रह्मस्वरूपा मुक्ति प्राप्ति होती है। 'चित्तस्य
६।८।७ से ६।१३।३)-पर्यन्त वह सद्ब्रह्म तुम ही हो,	शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये' (विवे॰चू०११)
का नौ बार 'अभ्यास' हुआ है। रूप आदिसे रहित	'कर्म चित्तकी शुद्धिके लिये है, मोक्षके लिये नहीं, आदि
सद्ब्रह्म अन्य प्रमाणका विषय नहीं है, यह 'अपूर्वता' है।	आचार्यके वाक्य हैं। इस प्रकार आचार्यने वेदोक्त कर्म-
इसका प्रतिपादक वाक्य है—'अत्र वाव किल सत्सोम्य	उपासना तथा ज्ञानका समन्वय किया है। शास्त्रार्थ-
न निभालयसे' (छा॰उ॰ ६।३।२) 'सौम्य! (लवण	प्रकाशनद्वारा मानवको सर्वोच्च स्थिति ब्रह्मस्वरूपतक

पहुँचाना उनका उद्देश्य रहा। मानवोंको सचेत करते हुए प्राणियोंका वही आत्मा है।' आत्मस्वरूप ब्रह्मज्ञान

[भाग ९२

उन्होंने कहा— होनेपर इसी जीवनमें ब्रह्मानुभूति होती है। मैं त्रिकालाबाधित

सत् हुँ, सबका स्वरूप होनेसे चित् हुँ, आकाशवत् इतः को न्वस्ति मुढात्मा यस्तु स्वार्थं प्रमाद्यति।

असीम होनेसे अनन्त हूँ और दु:खलेशशून्य होनेसे दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥

आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा न कभी जन्म है, न मरण। मैं (विवेकचुडामणि ५)

'दुर्लभ मानवदेहको प्राप्तकर और उसमें पुरुषत्वको नित्य, निर्विकार, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप हूँ', आदि

पाकर जो अपने मोक्षमें प्रमाद करता है, उससे अधिक स्वाभाविक अनुभूति होती है', इसी प्रकार हम आद्य मूर्ख और कौन होगा!' अतः शरीर रहते ही अपना श्रीशंकराचार्यके सदुपदेशानुसार अपने जीवनका निर्माण

करें, इसीमें हमारा परम कल्याण है और यही वस्तृत: कल्याण अवश्यमेव करना चाहिये। मोक्ष ब्रह्मस्वरूप है

आचार्यके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है। और ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द, अनन्तरूप है। सभी

——— सभीका ईश्वर एक प्रेरक-कथा-

'नरहरि! भगवान् विट्ठलनाथने प्रसन्न हो मुझे पुत्र दिया। मैं आज उन्हें रत्नजटित कमरपट्टा चढ़ाने आया

हूँ। पंढरपुरमें सिवा तुम्हारे कोई उसे गढ़ नहीं सकता। इसलिये उठो, भगवान्की कमरका नाप ले आओ और

शीघ्र उसे तैयार कर दो।'—एक साहुकारने आकर नरहरि सुनारसे कहा।

नरहरिने पंढरपुरमें रहकर भी कभी भूलकर विद्वलनाथका दर्शन नहीं किया था। वह परम शैव था।

शिवके भजन-पूजनमें सदा अनुरक्त वह भक्त वैष्णवोंके देव विट्ठलनाथसे इतना बचता कि बाहर निकलते

समय सिर नीचाकर चलता, ताकि धोखेमें विट्ठल-मन्दिरका शिखर-दर्शन भी न हो जाय। नरहरिने मन्दिरमें जाना स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। लाचार हो व्यापारी स्वयं ही जाकर नाप ले आया।

कमरपट्टा बना और भगवानुको पहनाया गया तो छोटा होने लगा। फिर नरहरिके पास उसे लाया गया। नरहरिने

बड़ी कुशलतासे उसे बड़ा कर दिया। अबकी बार वह अपेक्षासे अधिक बड़ा हो गया।

साहुकार चिन्तित हो उठा—'क्या सचमुच भगवान् हमपर अप्रसन्न हो गये ? क्योंकर वे इसे स्वीकार नहीं

करते ?' उसने आकर नरहरिसे बड़ी अनुनय-विनय की। अन्ततः नरहरि मन्दिर चलने और स्वयं नाप लेनेको

तैयार हुआ—इस शर्तपर कि मेरी आँखोंपर पट्टी बाँध ले चलो और मैं हाथोंसे टटोलकर नाप ले लूँगा।

आँखोंपर पट्टी बाँधे नरहरि सुनार पकड़कर मन्दिरमें लाया गया। उसने मूर्तिको टटोला तो दशभुज, पंचवदन,

भुजंगभुषण, जटाधारी शंकर ईंटपर खड़े मालुम पड़े। अपने आराध्यदेवको पाकर उनके दर्शनसे बचनेकी अपनी बुद्धिपर उसे तरस आया और उसने अत्यन्त अनुतप्त हो आँखोंसे पट्टी खोली। पट्टी खोलते ही पुन: पीताम्बरधारी

वनमालीको देख वह सकपकाया और पुन: पट्टी बाँध ली। फिर हाथोंसे टटोला तो वे ही भवानीपित भोलानाथ

और पट्टी खोलते ही रुक्मिणीरमण पाण्ड्रंग ईंटपर खड़े तथा कटिपर हाथ धरे दिखायी पडते। नरहरि बड़े असमंजसमें पड़ गया। उसे ईश्वरमें भेद-बुद्धि रखनेपर अच्छा पाठ मिल गया। शिवका अनन्य

भक्त होनेके कारण उसे अब ईश्वराद्वैतका रहस्य समझते देर नहीं लगी। उसने दीनवाणीसे प्रभुकी प्रार्थना की। भगवान् प्रसन्न हो उठे। ईश्वरमें भेदबुद्धि नष्ट करना ही उनका लक्ष्य था। उसके सिद्ध हो जानेपर

भक्तकी अनन्यताके वशीभृत हो उन्होंने उसकी प्रसन्नताके लिये अपने सिरपर शिवलिंग धारण कर लिया।

न्मिले तर्पेहराक के। इंटिइन्व अहमराके hिक्र प्रांत अंग्रेस हु की विश्व निर्मालक | निर्मालक है। TH LOVE BY Avinash/Sh

गोपियोंके स्वर संख्या ९] संत-संस्मरण (मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन ऋषिकेशमें हुए सत्संगसे) महाराजके सामने प्रतिज्ञा की। महाराजजीने उसे चित्रकूट वृन्दावनमें एक सिद्ध संत थे—पहाड़ी बाबा। लोग इसी नामसे उन्हें जानते थे। अत्यन्त अपरिग्रही स्वभाव। जाकर कामतानाथजीकी परिक्रमा करने तथा निष्ठापूर्वक वस्त्रके नामपर दो अचला-लॅंगोटीमात्र रखते थे। एक प्रतिज्ञापर डटे रहनेका आदेश दिया। सुना गया कि कुछ बार एक उच्च अधिकारी उनके दर्शनार्थ आया, जिसे दिन बाद उसका निलम्बन निरस्त होकर वह अधिकारी अपनी आध्यात्मिकता आदिका भी दम्भ था। उसने पुन: पद-प्रतिष्ठित हो गया। सन्तोंका चित्त स्वच्छ दर्पणके समान होता है, पूछा—महाराजजी! मुझे कल्याणमार्गका उपदेश करें। महाराजजी मौन रहे, कुछ बोले नहीं। उसने पुन: प्रार्थना जिसमें सब साफ-साफ दीखता है, कुछ छिपता नहीं की। महाराजजी फिर चुप रहे। शिष्योंने धीरेसे निवेदन और उनका हृदय नवनीतसे भी कोमल होता है, जो किया कि बड़े अधिकारी हैं, उन्हें उत्तर देना चाहिये। सबके कल्याणके भावसे सदा भरा रहता है। महाराजजी बोल पड़े—'जितना रुचै, जितना पचै, उतना ही खा। ज्यादासे पेट फट जायगा।' उपस्थित लोग और एक सज्जन सन्त-दर्शनहेतु वृन्दावन पधारे। एक आगन्तुक अधिकारी सन्न। सभी धीरेसे विदा हो लिये। सन्तके पास आकर उन्होंने जिज्ञासा की—'महाराज! कुछ समय बाद सुननेमें आया कि उन अधिकारी कुछ बताइये, जिससे हमारा कल्याण हो।' प्राय: सन्त-महोदयका भ्रष्टाचारके आरोपमें निलम्बन हो गया है। महात्माओं के पास जाकर लोग इस प्रकारकी जिज्ञासा इस विषयमें उनकी छवि जनसामान्यमें भी अच्छी नहीं करते रहते हैं, यद्यपि उस विषयमें उनकी कोई गम्भीरता थी। कुछ लोगोंने उन्हें सलाह दी कि शायद पहाडी नहीं होती। महात्माजीका उत्तर था—'जो जानते हो, बाबाके कोपसे ऐसा हो गया होगा, इसलिये उन्हींकी उतना कर लो। तुम्हारे कल्याणके लिये उतना पर्याप्त शरणमें जाना चाहिये। वे आये और बाबाके चरणोंमें है।' लोट गये कि मेरी रक्षा कीजिये। महाराजजीने कहा कि वस्तुत: आत्मकल्याणके मार्गपर जानकारीका हमारे देशमें उतना अभाव नहीं है, जितना संकल्पपूर्वक जाने तुमने अपने कल्याणका मार्ग पूछा सो बता दिया था। अब प्रतिज्ञा करो कि अपने सरकारी वेतनके अतिरिक्त हुएको संकल्पपूर्वक कार्यरूपमें परिणत करनेका है। कुछ भी स्वीकार नहीं करोगे। उसने हाथ उठाकर —प्रेम गोपियोंके स्वर (श्रीमती करुणा मिश्रा) फिर घुमड़ ये मेघ छाये श्याम न आये। उर वीणाके तार झंकृत कर मधुर फिर स्नेह लाये। गोकुलसे ये उठी बदरिया बरसाने वरसा बरसाये। मुरलीके वे स्वर मनोहर हमरे तन मनमें समाये। श्याम मिलन को आकुल राधा राहमें नैना बिछाये। श्याम न आये॥ फिर०॥ हम तो तुम्हरे प्रेम की घनश्याम वो घायल हिरनिया। श्याम न आये॥ फिर०॥ नेहकी सुनी डगरिया प्रीति की रीती गगरिया। कस्तुरी के मृग की भाँति मनमें हो, मन चैन न पाये। तुम बिन मोहन ब्रजमें हमको, कुछन भाये, कुछन भाये। श्याम न आये॥ फिर०॥ न कोई पाती, न खबरिया जब से गये मथुरा नगरिया। श्याम न आये॥ फिर०॥ हमरी प्रीतिको तो कान्हा लगी नजर पलपल नजराये। उस अगमका प्यार पाने प्रिय मिलनका राग गाने। सजाये न आये॥ फिर०॥ श्याम न आये॥ फिर०॥ श्याम

अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु (श्रीहरी मोहनजी) महात्मा गाँधीका कहना था कि 'मुझे ऐसा कोई पुकारनेपर ही सुनते हैं अन्यथा नहीं? यदि ऐसा होता अवसर याद नहीं आता जब मैंने उन्हें (ईश्वर)-को तो उन्हें अहैतुकी कृपा करनेवाला कैसे कह सकते थे। सच्चे मनसे पुकारा हो और उन्होंने न सुना हो।' वह तो अतिशय दयालु हैं और दया करनेमें आलस्य

नहीं करते (गजेन्द्र-मोक्षसे)। स्वामी कृष्णानन्दजीने

श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्र-मोक्षका एक प्रसंग है। सरोवरमें ग्राह गजराजको खींचकर ले जा रहा था। एक अवसरपर कहा था—'He protects us all the साथके हाथी उसकी कोई मदद नहीं कर पाये और time—we must learn to see his grace in every उसका भी बल काम नहीं कर रहा था। तब उसने

असहाय होकर भगवानुको पुकारा। पूर्वजन्ममें सीखकर कण्ठस्थ किये हुए स्तोत्रका पाठ करने लगा। उसकी पुकार सुनकर श्रीहरि (भगवान्) प्रकट हो गये और

करुणावश गजराजको ग्राहके चंगुलसे बचा लिया।

गीताप्रेस गोरखपुरके द्वारा वही स्तुति गजेन्द्र-मोक्षके नामसे छोटी-सी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित है। उसके आरम्भमें 'परिचय'में श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीने लिखा है-महामना मालवीयजी महाराज कहा करते थे

कि गजेन्द्रकृत इस स्तवनका आर्त-भावसे पाठ करनेपर लौकिक, पारमार्थिक महान् संकटों और विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है ...। तात्पर्य हुआ कि जिस प्रकार गजराजने भगवानुको

पुकारा था, उसी भाँति कोई भी पुकारे तो वह सुनते हैं और उसका उद्धार करते हैं। महाभारत ग्रन्थमें धृतराष्ट्रकी राजसभामें उनके पुत्र

दुःशासनद्वारा द्रौपदीको निर्वस्त्र करनेके प्रयासका प्रसंग है। द्रौपदी पहले अपने पतियोंकी ओर फिर पितामह और

अन्य गुरुजनोंकी ओर आशाभरी दुष्टिसे देखा, पर जब किसीने भी उनकी लाज बचानेहेतु कोई उपक्रम नहीं किया तब उन्होंने असमर्थ होकर द्वारिकाधीश (भगवान् कृष्ण)-को आर्त-भावसे पुकारा तो भगवान् उनका चीर

लाज रखी।

अन्तहीन बढ़ाते ही गये। दु:शासन थककर बैठ गया और द्रौपदीको भगवान्ने निर्वस्त्र होनेसे बचाकर उनकी

इन दृष्टान्तोंसे यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर

event.' (वह निरन्तर हमारी रक्षा करते रहते हैं-हमें हर घटनामें उनकी कृपालुताका दर्शन करना सीखना चाहिये)। यह उनका स्वयंका अनुभव था और अन्य अनेक

लोगोंका भी ऐसा ही अनुभव है। जब राणाने मीराबाईके पास जहरीला सर्प और फिर विषका प्याला भेजा तो उनके आराध्य गिरधर गोपालने स्वयं उन्हें फूलोंकी माला और अमृतमें परिवर्तित कर दिया। हिरण्यकशिपुने जब अपने पुत्र प्रह्लादको पहाड्से

नीचे फेंकवाया, आगमें जलानेका प्रयास किया तब उन्होंने (प्रह्लाद) भगवान्को पुकारा नहीं, बस उनके ध्यानमें मग्न रहे। प्रभुने अपने-आप ही अपने भक्त, अपने शरणागतकी रक्षा की। ब्रह्मनिष्ठ संत स्वामी श्रीशरणानन्दजीके साधना-कालमें उनके सद्गुरुने उनसे कहा था कि 'ठहरी हुई

जीवनका एक प्रसंग है—पटनामें नेशनल साइंस कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। स्वामीजीके प्रेमियोंने उन्हें भी आमन्त्रित किया। फिर कहा गया कि वह अधिवेशनको सम्बोधित करेंगे। जब वह मंचपर पहुँचे तो अधिवेशनमें भाग लेनेवालोंमेंसे किसीने कहा कि आप परमाण्-विज्ञानपर कुछ बताइये। प्रश्नकर्ताने चाहे जिस भी

बुद्धिमें श्रुतियोंका ज्ञान स्वत: प्रकट होता है।' स्वामीजीके

भावसे पूछा हो, परंतु स्वामीजी आधा घण्टातक विशेषज्ञकी भाँति परमाण्-विज्ञानपर बोलते रहे। जब वह चलने लगे तो एक भक्तने पूछा कि आप तो केवल कक्षा चार या पाँचतक पढ़े थे, आपने यह सब कैसे बोला? इसपर

संख्या ९] अहैतुकी कृपा करनेवा	ले अतिशय दयालु प्रभु ३३
*****************************	<u> </u>
उन्होंने कहा कि जिसने साइंस बनायी है, उसीने मुझे	सप्ताहमें अपटूडेट आना असम्भव ही था।
बता दिया।	कुछ ही दिनों पश्चात् टीचरने ब्लैक बोर्डपर
इसका एक पहलू तो यह है कि ठहरी हुई बुद्धिमें	कोआर्डिनेट ज्योमेट्रीका एक प्रश्न लिख दिया और
परमाणु-विज्ञानका ज्ञान स्वतः प्रकट हो गया। दूसरा	बारी-बारीसे उन सबसे अगला स्टेप पूछने लगे, जिनको
पहलू यह है कि उनके शरण्य (प्रभु)-ने अपने	चेतावनी दी थी। उस किशोरने इस आशंकासे कि कहीं
शरणागतकी लाज रखनेके लिये स्वयं ही उनकी वाणीके	उससे न पूछ दिया जाय, डेस्कमें मुँह छिपानेका प्रयास
माध्यमसे बोल दिया। स्वामीजीकी जिस कोटिकी शरणागति	किया, तबतक उसे अपना नाम सुनायी पड़ा—वह
थी—सम्पूर्ण समर्पण (total surrender) उसमें उनके	यन्त्रवत् खड़ा हुआ और अगला स्टेप बोल दिया, जो
द्वारा प्रभुसे मददके लिये कहना—पुकार लगाना, सोचा	बिलकुल सही था। क्लासके अन्तमें सबसे तेज लड़कोंने
ही नहीं जा सकता। अत: यही मानना पड़ेगा कि प्रभु	पूछा कि तुमने कैसे बता दिया, यह तो हमें भी नहीं
अपनी अहैतुकी कृपासे अपनी ही ओरसे स्वयं ही उनके	मालूम था। उसने कहा कि उसे भी नहीं मालूम कि
मुखसे आधे घण्टेतक बोलते रहे।	उसने कैसे बताया।
परमहंस योगानन्दजीके जीवनका भी एक ऐसा ही	कदाचित् घबड़ाहटके कारण बुद्धि ठहर गयी थी
प्रसंग है। जब वह जहाजसे विदेश जा रहे थे तो रास्तेमें	और उसी ठहरी हुई बुद्धिमें स्वयमेव उत्तर आ गया, परंतु
उनसे सह-यात्रियोंको सम्बोधित करनेको कहा गया,	इसके पीछे प्रभुकी अहैतुकी कृपा और अतिशय दयालुता
परंतु वह एक शब्द नहीं बोल सके। अपने केबिनमें	ही मानना चाहिये कि उन्होंने उसे फजीहतसे बचानेके
जाकर अपने गुरुको याद करके खूब रोये। अगले दिन	लिये उसकी वाणीमें स्वयं उत्तर दे दिया। यदि ठहरी हुई
वह पाँच मिनटके बजाय पैंतालिस मिनटतक सुन्दर	बुद्धिका योगदान कहा जाय तब भी उन्हींकी कृपालुता
अंग्रेजी भाषामें बोलते रहे और श्रोता शान्त होकर सुनते	तो थी, जिसने उसकी बुद्धिको ठहरा दिया। उसे तो बुद्धि
रहे। यदि रोनेको पुकार माना जाय तो दूसरी बात होगी	ठहरनेका उस समय अता-पता भी नहीं था। सब कुछ
अन्यथा उनके गुरुने (सद्गुरु, ईश्वरका ही रूप तो होता	अपने-आप ही हो गया।
है) या प्रभुने स्वयं अपने बालककी लाज रखनेके लिये	वैसे ठहरी हुई बुद्धिमें ज्ञानका स्वत: प्रकट होना
उनके मुखसे बोला।	और उस अनन्त ज्ञानके भण्डार प्रभुद्वारा किसीके मुखसे
ऐसा ही अनुभव एक अन्य व्यक्तिका है।	स्वयं बोलना तत्त्वतः एक ही बात है। जब हमारी
किशोरावस्थामें इण्टर साइंसका छात्र था। पढ़ाई ठीकसे	सोचनेकी प्रक्रिया बन्द होगी, तभी तो उन्हें बोलनेका या
न करनेके कारण क्लासमें पिछड़ गया था। एक दिन	ज्ञान देनेका अवसर मिलेगा। यह एक प्रकारसे शरणागति
ट्रिग्नामेट्रीके क्लासमें बोर्डपर एक प्रश्न हल करनेको	ही है। जब अपनी विचार-शक्तिका भरोसा टूट जाता है
कहा गया। उसकी और उसके बाद कुछ और छात्र	तब वे परम कृपालु स्थिति सँभाल लेते हैं। उनके लिये
जिनसे कहा गया, की असफलतापर टीचर बहुत रुष्ट	सब कुछ बहुत सहज है, हम उनकी शरणमें जायें तो!
हुए और चेतावनी दी कि यदि एक सप्ताहमें क्लासमें	वह तो जब हमें ज्ञानके प्रकाशकी आवश्यकता होती है
अपटूडेट नहीं आये तो मैथेमेटिक्स छोड़कर आर्ट्सका	तब ज्ञान देते हैं और जब हम मुखर होते हैं, तब वे
विषय ज्वाइन करना पड़ेगा। वह किशोर बहुत परेशान	प्लेबैक सिंगरका रोल अदा करते हैं।
और भयभीत हो गया कि घरपर उसकी बड़ी भद्द हो	कैसी विलक्षणता है कि—
जायगी। मैथेमेटिक्सके एलजेब्रा, कोआर्डिनेट ज्योमेट्री,	(१) उनके बनाये नियमके अनुसार ठहरी हुई
ट्रिग्नामेट्री आदि अनेक उप-विषय थे। उन सबमें एक	बुद्धिमें हम उन परम चैतन्यसे सीधे जुड़ जाते हैं।

भाग ९२ (२) कैसे विशाल और विचित्र कम्प्यूटर हैं कि है और जो भी होता है, उसीमें प्रसन्न और आनन्दित न website (वेबसाइट)-की जरूरत और न connec-रहता है। tivity (जुड़ने)-की समस्या। Instant connection परंतु उन्हें पुकारना भी ठीक ही है। किसी संकटकी घड़ीमें हम उन परम कृपालु सर्वसामर्थ्यवान् (तत्काल जुड़ जाना) होता है। (३) उत्तरके लिये search (खोज) भी नहीं अपने परम हितैषीको ही तो पुकारेंगे, परंतु अन्य विश्वास, धनका, बलका या बुद्धिका विश्वास रखते हुए करना पड़ता। हमें question (प्रश्न) feed (भरना) भी प्रभुको पुकारनेका कोई अर्थ नहीं होगा। अनेक विश्वास नहीं करना पड़ता। प्रासंगिक (relevent) उत्तर तत्काल (instantly) आ जाता है। यह भी उनकी कृपालुता ही एक विश्वासमें और अनेक सम्बन्ध एक सम्बन्धमें विलीन कर देनेपर ही उन्हें पुकारना अर्थपूर्ण होता है। तो है कि वह प्रासंगिक (relevent) ही उत्तर आता है— यह नहीं होता कि उसके बजाय अपनी भक्तिका रहस्य जब द्रौपदीने सबसे निराश होकर, हाथसे और दाँतसे भी बताने लगें। चीरकी पकड़ छोड़ दी और असमर्थ भावसे उन्हें पुकारा तब कृष्ण भगवान्ने उनकी लाज रख ली। (४) यह भी नहीं होता कि वह कहें कि अभी मेरा हम उन्हें पुकारते ही तब हैं जब अपनी सामर्थ्यसे मन (mood) नहीं है, तुम अपनी समस्या स्वयं झेलो। उन्हें इसीलिये दया करनेमें आलस्य नहीं करनेवाला कहा गया है। हार जाते हैं और अपनेको नितान्त असमर्थ अनुभव करते पूर्व प्रस्तरोंमें उन दुष्टान्तोंको प्रस्तृत मात्र यह हैं। मीराजीने और प्रह्लादने इसका झंझट ही नहीं रखा। कहनेके लिये किया गया है कि ऐसा नहीं है कि प्रभ वे पूर्णरूपेण उनके आश्रित हो गये और उनकी भक्ति केवल पुकारनेपर ही कृपा करते हैं बल्कि वे अपनी और प्रेममें मग्न रहे। अपनी कोई इच्छा/चाह ही नहीं कृपालुताके वशमें होकर स्वयमेव ही अपने बच्चोंका रही, सिवा उनके प्रेमकी। हित साधन करते रहते हैं। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निष्क्रिय हो जायँ। हमें उन्हीं (प्रभु)-के आश्रित और शरणागत होकर उनकी करुणा, कृपालुता, महिमाका कहाँतक बखान किया जाय। पुरुषोत्तमदास जलोटाजीने एक अपना कर्तव्य-कर्म जो विवेक-विरोधी या अपनी सामर्थ्य-भजन गाया है, जिसकी मुख्य पंक्ति (lead) है-विरोधी नहीं है, को करना ही है। कर्तव्य होता ही वह है, प्रबल प्रेम के पाले पड़कर प्रभु को नियम बदलते देखा। जो विवेक-विरोधी और सामर्थ्य-विरोधी न हो। कार्यमें अपना मान टले टल जाये, भक्त का मान न टलते देखा॥ सफलतामें विलम्ब होनेपर हम अधीर और उद्विग्न होते हैं, जिसके लिये वास्तवमें कोई औचित्य नहीं है। दुढ विश्वासके ऐसे प्रभुकी शरणागित न अपनाकर इधर-उधर साथ अपने कर्ममें लगे रहें। ऐसे अनेक अनुभूत दृष्टान्त हैं, अन्य विश्वासोंमें भटकते रहनेसे बढ़कर हम लोगोंका और क्या दुर्भाग्य हो सकता है? यह तो मनुष्य-जन्म जिन्हें लिखनेपर यह गाथा बहुत लम्बी हो जायगी। इतना ही कहना पर्याप्त और विश्वासको सुदृढ़ करनेवाला होगा पाकर उसको गँवानेके समान है। अतः जिसने उनके प्रति अपनेको पूर्णरूपेण समर्पण कि जिस विलम्बको लेकर हम परेशान होते रहे थे, वह कर दिया, उनकी शरणागति अपना लिया, वह तो निर्भय कार्यको सफल बनानेहेतु प्रभुकी सुविचारित योजना थी। और निश्चिन्त हो जाता है। वह उनसे कोई अपेक्षा या ऐसे परम हितैषी, परम कृपालु, परम उदार प्रभुके हम चाह नहीं रखता, इसलिये किसी भी परिस्थितिमें उसका आश्रित हो जायँ या आर्तभावसे पुकारें, वह तत्त्वत: उनके उन्हें अपने लिये सहायता, कृपाहेतु पुकारनेका प्रश्न ही प्रति विश्वास ही है और बस आनन्द ही आनन्द है। नहीं. होता । वह तो अपनेको पूर्णतया उनको सौंप देता Hinduism Discord Server https://dsc<u>.gg/dharma</u> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha संख्या ९] श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) संत-चरित— श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) (श्री 'मातृशरण') सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें दक्षिणदेशमें दीक्षामें दीक्षित हुए और श्रीविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका रसाप्लुत अनुग्रह प्राप्तकर निज एक अद्भुत सिद्धात्मा हो गये हैं, जिन्होंने उस समय लुप्तप्राय वैदिक प्रकाश और हिन्दुत्वका पत्नीको भी अपने ही हाथों श्रीविद्यामें दीक्षित कर पुनरुद्धारकर राष्ट्रके नव निर्माणमें भारी सहायता दी। दिया। 'आनन्दी' अब 'पद्मावत्यम्बिका' हो गयी, दक्षिणदेश विद्वत्ता और साधनाके लिये प्रसिद्ध है। पत्नी नहीं साक्षात् जगन्माता! श्रीनृसिंहानन्दनाथने फिर गम्भीरराय नामक एक विद्वान् भक्त उन दिनों दूर-इनको भासुरानन्दनाथ नामसे परमा दीक्षामें दीक्षित दूरतक प्रसिद्ध थे। विजयनगर राज्यके एक राजाने किया। महाभारतके पाण्डित्यपूर्ण प्रवचनसे प्रसन्न होकर इनको सब साधनाओंमें सबसे अधिक कठिन श्रीविद्या 'भारती' की उपाधिसे विभूषित किया था। इनकी महात्रिपुरसुन्दरी और उनके स्वरूप 'श्रीचक्र'की साधनामें विदुषी और धर्मात्मा एवं पतिव्रता पत्नीसे अदुभुतकर्मी पूर्ण सिद्ध होनेपर दिव्यालोकसे अधिकारियोंको उपकृत भास्कररायका शुभजन्म भागामें उच्च ब्राह्मणकुलमें करने और जो भूले-भटके और विकर्मग्रस्त हो गये हुआ। योग्य माता-पिताकी सुयोग्य सन्तान। बचपनसे थे, उनको जगाने और सत्पथपर लानेके लिये इन्होंने ही भास्करराय अद्भुत प्रतिभाका परिचय देने लगे। कई लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और मार्गमें अनेक पाँच वर्षकी अवस्थामें इनका उपनयन-संस्कार काशीमें प्रसिद्ध महात्माओं और धर्माचार्यींको शास्त्रार्थमें हराया। किया गया और अपने वेदारम्भगुरु 'श्रीनरसिंहाध्वरि'से यह किसीके सिरपर अपने सत्प्रकाश और सिद्धान्तोंको इन्होंने बहुत ही कम समय और अवस्थामें १८ जबरदस्ती लादते न थे बल्कि नम्रता और विद्याएँ पढ़कर लोगोंको चिकत कर दिया। जन्मसे विनयशीलताके साथ निज अनुभूतियोंको जनताके सामने ही धर्म और ईश्वरके अभिमुख होने और फिर अपने रख देते थे, कट्टरपन्थियोंके विरोधको अपने मधुर पिताद्वारा सरस्वतीपूजामें दीक्षित होनेके कारण भाषणसे सप्रेम जीत लेते थे। इस प्रकार गुजरात प्रदेशमें वल्लभ-सम्प्रदायाचार्य और माध्वसम्प्रदायके श्रीभास्करराय दिनों-दिन भजनभावमें अधिकाधिक समय देकर मस्त रहने लगे। बालक कहीं संन्यासी न हो कई पूजित नेताओंको हराकर काशीमें आकर इन्होंने सोमयाग किया, जिसके अद्भुत प्रभावसे बहुत-से जाय, इस डरसे माता-पिताने शीघ्र ही इनके विवाहकी ठानी और 'आनन्दी' नामक विदुषी एवं सद्गुणविशिष्टा अधिकारीलोग उपकृत होकर इनके सत्प्रकाशमें दीक्षित कन्यासे विवाह कर दिया, जिसके गर्भसे पाण्डुरंग हो गये। ये जहाँ भी जाते थे, श्रीदेवीभागवत, रामायणके

नामक एक चमत्कारी पुत्रका जन्म हुआ। अद्भुत काण्ड और अथर्ववेदका रहस्य खोलते जाते श्रीभास्कररायका प्रतिभाशाली मस्तिष्क नरसिंहाध्वरिसे थे, क्योंकि अथर्ववेदके गुप्त रहस्योंको लोग भूल-प्राप्त १८ विद्याओंसे सीमित होनेवाला न था। ये भाल रहे थे और मनमाने ढंगसे तामसाचारमें प्रवृत्त आगे बढ़े और श्रीगंगाधर वाजपेयीसे इन्होंने तर्कशास्त्रपर हो रहे थे। मानवजातिके वास्तविक कल्याणके लिये

पूर्ण अधिकार प्राप्त किया, जिसके बलपर इन्हें बड़े- श्रीभास्करराय अथर्ववेदको अन्तिम और पूर्ण प्रकाश बड़े विद्वानोंपर अद्वितीय विजय हाथ लगी। ये सब मानते थे। इन्होंने अथर्ववेदपर एक रहस्यटीका लिखी विषय इनके भक्तिप्रधान हृदयको नीरस मस्तिष्कके थी और इन्होंके सत्प्रयत्नोंसे अथर्ववेदके गृढ रहस्य

निरर्थक खेल जान पड़े और इसके परिणामस्वरूप फिर जनताके सामने खुल पाये। आवश्यक स्थानोंपर श्रीशिवदत्तजी शुक्लद्वारा यह पुर्णाभिषेककी तान्त्रिक भ्रमण करके अन्तमें ये चोलप्रदेशमें अपने तर्कगृरु

भाग ९२ श्रीगंगाधर वाजपेयीके निकट ही एक स्थानपर रहने बढ़ा कि अकस्मात् कुंकुमानन्द स्वामी नामके एक परम लगे, यह स्थान इनको तंजौरके महाराष्ट्र राजासे दानमें सिद्ध महात्मा प्रकट हो गये और प्रश्नकर्त्ताको पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कर दिया, परमसिद्ध कुंकुमने देवी-अभिषिक्त मिला था, इसका नाम भास्कररायपुरम् रखा गया। जलको विद्वानोंकी आँखोंसे छुआ दिया और उस दिव्य चमत्कार सिद्ध गुरु श्रीभास्कररायके सम्बन्धमें अनेकों चमत्कार जलके लगते ही सबके नेत्रोंसे तमस् और अज्ञानके प्रसिद्ध हैं। ये श्रीविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके अनन्य आवरण हट गये और सबने साफ-साफ भगवतीको भक्त और कृपापात्र थे। कहते हैं, भगवती त्रिपुरसुन्दरीसे श्रीभास्कररायजीके कन्धोंपर आसीन होकर प्रश्नोत्तर देते यह हर घड़ी युक्त रहते थे और शास्त्रार्थोंमें उद्भट हुए देखा। विद्वन्मण्डली लिज्जित होकर विदा हो गयी। विद्वानोंपर विजय प्राप्त करानेमें भगवती ही इनकी श्रीभास्कररायको न्यासराज 'षोढान्यास' अच्छी सहायता करती थीं। सिद्धि प्राप्त होनेपर यह सब तरह सिद्ध था, जिसके फलस्वरूप वह किसीको सम्प्रदायोंके इष्टदेवों और आचारविधानोंको सत्य और झुककर नमस्कार न करनेके लिये बाध्य थे; क्योंकि प्रयोजनीय मानते थे और सबमें एक ही परमतत्त्वका झुककर नमन करनेसे नमनकी जानेवाली वस्तु फटकर दर्शन करते थे, जिसके कारण सभी मतवादी इनकी पूजा टुकड़े-टुकड़े हो जाती थी। एक समयकी बात है कि करते थे। फिर भी—अद्वैत सिद्धान्तको परम अनुभूति श्रीभास्करराय दहलीजमें बैठे हुए शिष्योंको पढ़ा रहे थे कि एक विद्वान् अद्वैतवादी संन्यासी उधरसे होकर पास मानते हुए भी-यह तान्त्रिक शुद्ध प्रक्रियाको अधिक महत्त्व देते थे और जगत्को मिथ्या या झूठा समझनेके ही एक मन्दिरमें चले गये। श्रीभास्करराय भी शामको स्थानपर विश्वको परमचैतन्यका जाग्रत् एवं सतत एक कार्यसे उसी मन्दिरमें गये, किंतु उन्होंने पूज्य विलास मानते थे, निष्क्रिय निर्गुण ब्रह्मके बजाय रसमयी संन्यासीको नमस्कार नहीं किया। इसपर संन्यासी बिगड़ साक्षात् भगवतीकी उपासनाको मुख्य मानते थे और गये और इस अशिष्ट व्यवहारका कारण पूछा। कहते थे कि माता भगवतीकी कृपासे ही अचल ब्रह्मके श्रीभास्कररायने अत्यन्त विनम्रतासे उत्तर दिया कि रहस्य जाने जाते हैं और परमतत्त्वका उद्घाटन अपने रिवाजी नमस्कार करनेसे आपकी बड़ी भारी हानि होती, सत्स्वरूपमें हो सकता है। वे सब सम्प्रदायोंके सीमित इस कारण नमन नहीं किया गया। संन्यासीके प्रमाण वादोंसे बहुत ऊपर थे, किंतु झगड़ा करनेवाला अपूर्ण मन माँगनेपर उनके कमण्डलु और खड़ाऊँ नमस्कारके लिये कब सन्तुष्ट होनेवाला था। लिहाजा शब्दोंका चक्कर मन्दिरके चबूतरेपर रख दिये गये। श्रीभास्करराय दोनों हाथ जोड़कर कुछ झुके ही थे कि दोनों खड़ाऊँ और काटते रहनेवाले वाचिक ज्ञानियोंने इनको तंग करना आरम्भ किया और वामाचारके तान्त्रिक साधनपर आक्षेप कमण्डलुके हजारों टुकड़े फटकर इधर-उधर बिखर गये। संन्यासी श्रीभास्कररायके अद्भुत प्रभाव और करके इनको गिराना चाहा। काशीकी विद्वन्मण्डली एक महत्ताके आगे झुक गये। तरफ और श्रीभास्करराय अकेले एक तरफ। इन्होंने बडे श्रीभास्कररायकी दिव्य दृष्टिमें भविष्यकाल कुछ प्रेमसे विद्वन्मण्डलीको तान्त्रिक विधानसे किये जानेवाले एक महायागमें निमन्त्रित किया। महायागकी विस्तृत दूरका समय न था, होनेवाली घटनाओंको वे बहुत पहले ही अपने अन्तर्ज्ञानमें उतार लेते थे। अपने आगे आनेवाले और चमत्कृतिपूर्ण विधि-प्रक्रियाको देखकर विद्वन्मण्डली चिकत रह गयी और श्रीभास्कररायके आध्यात्मिक किसी संन्यासी आदि पूज्य व्यक्तिकी बाबत पहलेसे ही प्रभावसे सब प्रभावित हो गये। किंतु हिम्मत करके एक जानकर यह अन्दर आँगनमें इस प्रयोजनसे चले जाते थे विद्वान् मन्त्रशास्त्रसम्बन्धी कुछ प्रश्न करनेके लिये आगे कि षोढान्यासके कारण आदरणीय व्यक्तिको नमस्कार

संख्या ९] संतोंका चरित्र न करनेसे प्रत्यक्षरूपसे लोकमें शिष्टाचारकी हानि न होने प्रामाणिक जीवनी तथा मन्त्र, तन्त्रशास्त्रपर टीका आदि पाये। इसके अतिरिक्त इन्होंने समय-समयपर बहुत-सी रूपसे सुन्दर ग्रन्थोंकी रचना की है। चमत्कारिक बातें कीं, जिनमें सबसे अधिक चमत्कार, तन्त्रशास्त्रके प्रति लोग जो नाक-भौं सिकोडने मेरे विचारसे प्राचीन साहित्यका पुनरुद्धार और नवीन लगते हैं और घृणाका भाव प्रदर्शित करते हैं, उसका साहित्यका निर्माण करना है। सयौक्तिक, सन्तोषप्रद समाधान श्रीश्रीभासुरानन्दनाथजीकी साहित्य-प्रकाश तप:साध्य अनुभूतियोंने अच्छी तरह कर दिया है। तन्त्रके माने हैं व्यवस्था, नियम, समग्रता और दृढ़ता। प्रत्येक धर्मसम्बन्धी वेद, वेदान्त, स्मृति, व्याकरण आदि किसी एक ही विषयमें आबद्ध न होकर सर्वतोमुखीभावसे कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये इन बातोंकी अनिवार्यता साहित्यके सभी अंगोंपर श्रीभास्कररायने एक साथ प्रकाश है ही। देशकी वर्तमान अधोगतिका मुख्य कारण डाला—वेद, वेदान्त, मीमांसा, व्याकरण, न्याय, छन्द, लोगोंका तन्त्रविज्ञानको भूल बैठना है। ज्योतिष, काव्य, स्मृति, स्तोत्र, मन्त्रशास्त्र और सर्वप्रिय काफी आयुका भोग लेकर बड़ी उमरमें उक्त महापुरुषने तन्त्र। टीका, भाष्य, स्वतन्त्र रचना, कुल मिलाकर स्वेच्छासे मध्यार्जुनक्षेत्र (वर्तमान—तिरुवितैमरुतूर)-में भौतिक पैंतालीस ग्रन्थ इस महापुरुषने निर्माण किये। सभी देह त्यागकर नित्यधाममें आरोहण किया। आरोहण करनेसे विषयोंपर और फिर इतनी अधिक संख्यामें अधिकारपूर्वक पहले देशके विभिन्न स्थानोंपर अनेक मन्दिरों, पाठशालाओं साहित्यका निर्माण शायद ही किसीने किया होगा। तथा चक्रपूजास्थलोंका जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण किया, जिससे हिन्दूधर्म फिरसे हरा-भरा हो गया। इस कार्यमें श्रीभास्कररायके शिष्य तो अनेक थे, किंतु प्रमुख अनन्य भक्त थे श्रीउमानन्दनाथ। इन्होंने अपने गुरुदेवकी इनको सहधर्मिणीका अपूर्व सहयोग रहा। - संतोंका चरित्र -साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥ परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥ सहि दुख समाजू। जो जग मंगलमय संत जंगम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ बिचार ब्रह्म संतोंका चरित्र कपासके चरित्र (जीवन)-के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपासकी डोडी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विषयासिक्त नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसलिये वह विशद है, और कपासमें गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संतका चिरत्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) [जैसे कपासका धागा सूईके किये हुए छेदको अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढे जाने, काते जाने और बुने जानेका कष्ट सहकर भी वस्त्रके रूपमें परिणत होकर दुसरोंके गोपनीय स्थानोंको ढकता है, उसी प्रकार] संत स्वयं दु:ख सहकर दूसरोंके छिद्रों (दोषों)-को ढकते हैं, जिसके कारण उन्होंने जगत्में वन्दनीय यश प्राप्त किया है। संतोंका समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत्में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराजमें) रामभक्तिरूपी गंगाजीकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वतीजी हैं। [श्रीरामचरितमानस]

आतिथेयी गोभक्ति-कथा— (पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय) एक दिन मेरे मनमें राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरी देवीके कहा—मैं भवानीपुराका रहनेवाला हूँ। सिद्धेश्वरीके दर्शनकी लालसा इतनी प्रबलरूपमें जगी कि पत्नीके मना दर्शन करने जा रहा हूँ। रातको यहीं वनगाँवमें रुकूँगा, सुबह चला जाऊँगा।

करनेपर भी मैं नहीं रुक सका। मेरे लड़केने भी कहा— पिताजी! सिद्धेश्वरी देवी बहुत दूर हैं, जंगली एवं पहाड़ी

रास्ता है। कोई मोटरका साधन नहीं है। आपका शरीर वृद्ध है, फिर आपकी इच्छा। एक-दो दिनमें पहुँचोगे

वहाँ। मैंने किसीकी बात नहीं मानी। थैला तैयार करके चल पडा। जाते-जाते हमारे बेटेने कहा—पिताजी! रास्तेमें एक गाँव मिलेगा। गाँव नहीं कस्बा है। बारहवीं

कक्षातक स्कूल है, थाना है, अच्छा है। नाम है वनगाँव। वहाँपर हमारे पूर्व प्राचार्यका स्थानान्तरण हो गया है। मैं उनके पास लिपिक रहा हूँ। आप रातको उनके

बंगलेपर रुक जाना। सुबह नहा-धोकर, नास्ता करके फिर आगेकी यात्रा करना। उनका नाम सत्यदेव त्रिवेदी है, पर उन्हें एस० डी० त्रिवेदी कहते हैं। जाड़ेका मौसम है। अधिक सामान लेकर जा सकते नहीं। वहाँ सब

व्यवस्था हो जायगी। मेरी पत्नीने कहा—मैं नाश्ता बनाये देती हूँ, थोड़े रुक जाओ। मैं यह नहीं जानती थी कि आप आज ही चल देंगे, पर मैं नहीं रुका। पत्नीसे कह दिया प्राचार्यजीके यहाँ रुकना है। वहीं भोजन-प्रसाद

कर लूँगा और झटकेसे चल दिया। दिनभर चलते-चलते इतना थक गया कि आगे एक कदम चला नहीं जा रहा था। रास्तेमें जो भी मिलता उससे पूछता वनगाँव कितनी दूर है ? लोग उत्तर देते—बस, यहीं आगे थोड़ी दूर। शाम हो गयी, अन्धकारके सागरमें सारा वनप्रान्त डूबा

जैसे-तैसे बढ़ा जा रहा था। अब रास्ता भी साफ-साफ नहीं दिख रहा था। इतनेमें टन-टनकी आवाज सुनायी दी, आगे गया तो देखा एक वृद्ध अपनी गायको लिये अपने खेतसे घरको जा रहे हैं। खूब चरकर पुष्ट गाय

जा रहा था। मैं वनगाँव त्रिवेदीजीके नामका जप करता,

वृद्ध किसानने हाथ जोड़कर अपने घर रुकनेका आग्रह किया। साथ ही कहा—मैं छोटी जातिका हूँ।

गरीब किसान हुँ, पर आपकी सब व्यवस्था बना दुँगा। आज रात मेरी झोंपड़ीमें ही विश्राम करें तो मेरा बड़ा

भाग्य होगा। मैंने कहा मैं यहाँके प्राचार्य एस०डी० त्रिवेदीके यहाँ रुकूँगा। प्राचार्य बड़े स्कूलके बड़े अधिकारी हैं-यह सोचकर वृद्धने अपनी अयोग्यता समझ हाथ जोड़ लिये। फिर भी उसने कहा मेरा घर

तो गाँवके इसी छोरपर है, पर स्कूल तो गाँवके दूसरे छोरपर सरकारी क्वार्टरसे आगे है। सुविधाकी आशासे मैं बढ़ता चला गया। शायद रातके सात-आठ बज रहे होंगे। मैं पृछता-पृछता चला जा रहा था। बस्ती प्राय: समाप्त हो गयी थी। उसके

आगे सरकारी क्वार्टर थे। रातको नामपट्टी तो दिख नहीं रही थी। प्रत्येक क्वार्टरमें पूछता-पूछता आगे त्रिवेदीजीके क्वार्टरके सामने पहुँच गया। मैंने कहा मैं महादेव उपाध्याय हूँ। भवानीपुरासे आ रहा हूँ। मैं आपके यहाँ । मेरा वाक्य पूरा नहीं हो

पाया कि वे तपाकसे बोले—यह कोई होटल या धर्मशाला नहीं है, समझे। आप कहाँसे आ रहे हैं, कौन हैं, मुझे इससे क्या मतलब? नगर भवनमें चले जाइये या किसी होटलमें। यहाँ कोई जगह नहीं है। जाइये, आप जाइये। मैंने कहा रातमें कहाँ जाऊँ ? रात हो गयी

है। प्राचार्यजीने कहा-हाँ-हाँ, रात हो गयी है, तो मैं क्या करूँ ? क्या रात मैंने कर दी ? आप जाइये। मैंने

पूछा नगर भवन किधर है, उन्होंने अपने चपरासीसे कहा, इनको नगर भवनका रास्ता बता दो, जाओ। वह

िभाग ९२

क्वार्टरकी चार दीवारीसे निकला और थोड़ी दूर जाकर मध्यम गतिसे चल रही थी। उसकी घण्टीका स्वर तालमें बज रहा था। वृद्धने मुझे देखा तो हाथ जोड़कर राम-बोला—सीधे चले जाओ, फिर दाहिनी ओर मुड़ना, फिर रामि। क्रियां इक्तर्पे इंद्रुलियं अवि प्रहानिसे एक विश्व के अपने प्राप्त के स्मिन्न के अपने प्राप्त के अपने के अ

संख्या ९] आति	छियी ३९
**************************************	<u> </u>
लेना। मेरा घर आ गया है। मैं दायें मुड़ा, बायें मुड़ा,	यहीं रुकिये। मैंने तो तभी आग्रह किया था। भगवान्की
सीधा चला, टेढ़ा चला, अन्तमें नालीमें गिर गया। कपड़े	कृपासे आपकी सेवा मिली। झोंपड़ीके भीतर जलती हुई
भीग गये। कहीं प्रकाश नहीं दिख रहा था। फिर वापस	आगको देखकर मैं प्रसन्न हो गया। नालीमें गिरनेसे
मुख्य मार्गको लौटा। चलते-चलते एक क्वार्टरके पिछवाड़े	कपड़े गीले हो गये थे। मैंने गीली धोती उतारकर गमछा
गाय बँधी थी, उसे देखकर सोचा कोई सज्जन आदमीका	पहन लिया और आगके पास बैठ गया। उसने आगके
घर होगा। यहाँ पूछ लूँ, आगे गया और पुकारा—ओ	पास डेगचीमें पानी रख दिया। कुछ गुनगुना हो गया तब
भाई साहब! ओ बाबूजी, मैं रास्ता भूल गया हूँ, नगर	बोला—आप गरम पानीसे हाथ-पाँव धो लें। तबतक मैं
भवन किस तरफ है, बताओं ?	बाल्टी माँजकर आपके पीनेके लिये कुएँसे ताजा पानी
क्वार्टरमेंसे एक आदमी आता हुआ दिखायी दिया।	लाता हूँ।
पासमें गया तो देखा वह तो गाय नहीं एक जर्सी बाँधी	लम्बी झोंपड़ीमें एक ओर गाय बँधी थी। दूसरे
हुई थी। मैं भूलकर उन्हीं प्राचार्यजीके क्वार्टरके पीछे	कोनेमें बछड़ा। मुझे देखकर गाय खड़ी हो गयी और
पहुँच गया था। इतनेमें प्राचार्यजी भीतरसे आये, मुझे	सरल-सरस नेत्रोंसे देखने लगी। इतनेमें वह वृद्ध आ
देखकर बोले—अरे! आप घूम-फिरकर फिर आ गये,	गया। उसने बाल्टी रख दी और हाथ-पैर धोनेहेतु गरम
बड़े बेशर्म हैं। यहाँ रहनेको जगह नहीं है। कितनी बार	पानी दिया। कहा मैं आपके पैर धो देता हूँ और आगे
कहूँ, आप जाइये। भीतरसे पत्नीने कहा—'बूढ़े आदमी	बढ़कर जबरदस्ती पैर धोने लगा। फिर अपने साफेसे
हैं, अँधेरेमें भूल गये होंगे। रातभर रोक दो, सुबह जल्दी	पोंछने लगा। गीली धोती साफ कर दी। फिर आगमें
वले जायँगे।' प्राचार्यजी बोले—'अरे! तुम्हारा दिमाग	और ईंधन लगा दिया। एक बोरा बिछा दिया। आग
खराब हो गया क्या? क्यों आफत मोल लेती हो	तापनेसे मेरी थकावट कुछ कम हो गयी। भूख तो खूब
बेकारमें। कौन चक्करमें पड़े, फिर कहेंगे भूखा हूँ। यह	लगी थी, पर मैं इतना थक गया था कि अब विश्राम
चाहिये, वह चाहिये। मैं किसीका नौकर नहीं हूँ, समझे।	करना चाहता था। फिर वृद्ध किसानने कहा—महाराज!
तुम अपना काम करो, मेरा मूड खराब मत करो।' बेचारी	में धीवर हूँ, आप मेरा बनाया तो खायेंगे नहीं। मैं भी
आज्ञाकारिणी धर्मपत्नी चुप रह गयीं।	किसीका धर्म नहीं बिगाड़ना चाहता। सामान देता हूँ,
में प्राचार्यजीकी गालियाँ खाकर वहाँसे लौटकर	आप यहीं आगपर खुद बना लें। मैंने कहा—नहीं, मैं
मुख्य रास्तेसे चलता–चलता उसी किसानके घरकी ओर	बहुत थक गया हूँ। बस, विश्राम करूँगा, पर वह न
बढ़ा। कुत्ते रास्ता रोक रहे थे। लोग पूछते कौन है, कौन	माना। बोला मैं ब्राह्मण अतिथिको भूखा नहीं सोने दूँगा।
है ? मैं कहता—मैं हूँ परदेशी भूला-भटका। पेड़ोंकी	उसने कुछ आलू, अरबी, शकरकन्दी आगमें दबा दिये।
छायामें अँधेरा और अधिक गहरा गया था। कुछ	फिर कुछ मूँगफली लाया। बोला—महाराज! आजकी
दिखायी नहीं दे रहा था। मैंने किसानसे नामतक नहीं	ही खोदी हुई हैं, ताजी हैं। होरा बनाकर खा लें। मैं
पूछा था। किसे पुकारूँ? पर अन्दाज है कि इन्हीं	अदरक, धनिया, मिर्च, नमक ला देता हूँ, चटनी बना
पेड़ोंकी झुरमुटकी ओर वह गया था। मैं साहस करके	लें। मैं आगपर भूनकर मूँगफली खाने लगा, बीच-बीचमें
आगे चला। मेरे पदचाप सुनकर अचानक वह बोला—	चटनीका स्वाद लेता। फिर वह कड़ाही और घीका
कौन? पण्डितजी!' मेरी जानमें जान आयी, मैंने	डिब्बा लाया। गुड़ और बूरा लाया। उसने एक लौकीको
कहा—'हाँ, मैं ही हूँ।' वह दौड़कर आया। अपनी	छीलकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये। फिर
बाड़की टटिया खोली और कहा, अच्छा हुआ आप आ	बोला—महाराज! क्या आपने कभी लौकीका हलवा
गये। शायद प्राचार्य साहब घरपर नहीं होंगे। आप प्रेमसे	खाया है ? बहुत अच्छा लगता है। कड़ाहीमें घी, जीरा

भाग ९२ विष उतारते हैं। अत: यहाँ आये हैं। गनपत बाबा डाल दीजिये, बूरा डाल दीजिये। लौकीमें पानी तो होता ही है। तनिक देरमें बन जायगा। फिर उसने आगमें दबी नीमका झोंका लेकर मन्त्र पढ़ रहे थे। वह पैर हिलाने आल्, अरबी और शकरकन्दी निकाली। उन्हें छीलकर लगा, पर ठीक होता दिखायी नहीं दिया। बोला-इन्हें कुछ गुड़के साथ खायें कुछको कड़ाहीमें इतनेमें किसी आदमीने कहा—मैंने सुना है कि भवानीपुराके एक उपाध्यायजी साँपके काटे स्थानको डालकर घीमें तलकर नमकीन बनाकर खायें। देखिये, लौकीका हलवा बन चुका है। इसी कड़ाहीमें घीमें तल चीरकर जहर चूस लेते हैं और आदमी बच जाता है। लें। गायका घी है महाराज! तबतक मैं छानकर थोड़ा-चाहे जैसा विषैला सर्प हो। पर उनके पास जल्दी-से-सा आटा लाता हूँ। उससे गोबरकी कण्डीपर अंगा बाटी जल्दी पहुँचना चाहिये। गनपत बाबाने कहा कि भवानीपुराके बना लें। मैं उसके बोलनेकी तत्परता और कामकी एक पण्डितजी तो हमारी झोंपड़ीमें ही रुके हुए हैं। उन्हें प्राचार्यजीके यहाँ रुकना था पर वे मिले नहीं, तब रातको व्यवस्थाकी व्यस्ततामें कुछ बोल ही नहीं पा रहा था। मेरे पास आकर रुके। यह सुनते ही प्राचार्य एस० डी० प्रेमभरा आग्रह टाल नहीं पा रहा था। थोड़ी ही देरमें त्रिवेदी तथा उनकी पत्नी—दोनों दौड़कर आये और सब व्यंजन तैयार हो गये। मैंने मन-ही-मन भगवान्को आकर चरणोंमें मस्तक रखकर रोने लगे। आपका हमने समर्पितकर खाना शुरू किया। अहा! कैसा स्वादिष्ट भोजन है। मैंने खूब डटकर खाया, फिर भी बचा रहा। बहुत अपमान किया। आपने अपना नाम भी बताया फिर तब उसने भी प्रसाद मानकर खाया। बड़ा सुख मिला। भी हमने उपेक्षा की। वे चरणोंमें पड़कर बेटेके प्राणोंकी थोड़ी देरमें वह कम्बल लाया। उसे बिछा दिया और भीख माँगने लगे। बेचारी निर्दोष पत्नी; वह पतिके आगे हठ न कर सकी, पछता रही थी। हँसकर बोला—ऊपर आप अपने कपड़े बिछा लें। आपके पास ओढ़नेको शॉल तो है। वैसे आमके पेड़ोंके मैंने प्रत्यक्ष जगदम्बा गोमाताकी प्रदक्षिणा करके कारण और आगके कारण यह मेरी झोंपड़ी गरम हो प्रणाम किया, फिर जगदम्बा राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीको गयी है। अब आप लेट जायँ। मैं लेट गया। अधिक प्रणाम किया। फिर बाहर आया, साँपके काटे स्थानपर चीरा लगाया और विष खींचने लगा और बड़े यत्नसे थका हुआ था। थकावटके कारण कराहने लगा। उसे सुनकर वह आया और आकर मेरे पैर दबाने लगा। मैंने सारा विष खींच लिया। थोडी देरमें बालकने आँखें खोल बहुत मना किया पर माना नहीं। वह बूढ़ा था, पर इतनी दीं। फिर मैंने उसे गायका घी पिलाया। बालक पूर्ण जोरसे दबा रहा था कि थोड़ी देरमें थकावट दूर हो गयी। स्वस्थ हो गया। सब लोगोंने मेरे विष चूसनेका चमत्कार फिर बोला—मैं आपकी पीठ दबाता हूँ। तबतक आप देखा। बालक उठकर बैठ गया। प्राचार्यजी एवं उनकी कोई हरिचर्चा सुना दें। वह पीठ दबाने लगा। मैं राजा धर्मपत्नीने रोते हुए मुझे प्रणामकर कहा-हम जीवनमें दिलीपकी गोभक्ति सुनाने लगा। मुझे ध्यान ही नहीं कभी आपका उपकार नहीं भूल सकते। प्राचार्यजी चला, मैं कब सो गया। सुबह कब हो गयी मुझे पता बोले—मैं अपनी नीचतापर शर्मिन्दा हूँ। माता-पिताने नहीं। मुझे झोंपड़ीके बाहर आमके पेड़ोंके नीचे लोगोंकी बालकको छातीसे लगा लिया। सब जनसमूह मेरी जय-जयकारकर प्रणाम करने लगे। सब लोग चले गये। भीड़ दिखायी दी। घबराकर उठा। क्या हो गया—क्या हो गया? बाहर आया तो पता चला कि एस० डी० प्राचार्य त्रिवेदीजीने मुझसे घर चलनेका आग्रह किया। त्रिवेदीका लड़का बाहर क्रिकेटका मैच खेलने गया था। मैंने कहा—अभी मैं सोकर उठा हूँ। कोई नित्य नियम या खेलकर लौट रहा था कि रास्तेमें सर्पने डस लिया। उसे भजन-पूजन नहीं किया है। पहले मैं उससे निवृत्त होऊँगा। आप पधारें, आपको विद्यालय जाना होगा। मुझे कोई रातको ही मोटरसे लाया गया। जहरसे उसका पूरा शरीर हरा-नीला पड गया। किसीने बताया है कि गनपत बाबा बन्धन नहीं है। प्राचार्यजीकी पत्नी बोली—आप वहींपर

मं ख्या ९] आति	आतिथेयी ४१				
**************************************	**************************************				
शौचादिसे निवृत्त होकर भजन-पूजन कर लें। पर मैंने	नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृतिका मूल गाय है। गव्य				
कहा—यहाँ सुन्दर कुएँका ताजा पानी है, खुली जगह है।	पदार्थोंके सेवनके कारण तुम सच्चे अर्थोंमें मानव हो।				
यहाँ सब प्रकारकी सुविधा है फिर मुझे आगेकी यात्रा	पाश्चात्य शिक्षा पाकर पढ़े-लिखे लोग अधिक स्वार्थी				
करनी है। आप लोग जायँ। पत्नीका संकेत पाकर प्राचार्यजीने	और चतुर चालाक हो गये हैं, पर वे किसी दूसरेको नहीं				
पुन: मुझसे घर चलनेका आग्रह किया और कहा मैं भी	स्वयंको ही धोखा देकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं।				
ब्राह्मण हूँ। आप मुझे सेवाका अवसर दें।	प्राचार्यजी घर जाकर बच्चेको घरपर छोड़कर पुन:				
यह सुनकर मुझे कुछ रोष आ गया। मैंने कहा—	लौट आये थे। वे इस पूरी चर्चाको सुन रहे थे। वे				
आपको सेवाका अवसर दिया जा चुका है और मैंने	आत्मग्लानिसे भर गये। एक शब्द भी नहीं बोल सके।				
आपकी भावभरी सेवाका आस्वादन भी कर लिया है।	उनका सिर अब ऊपर नहीं उठ रहा था। वे कर्तव्यसे				
अब आप कृपा करें। मैं अधिक पढ़े-लिखे लोगोंकी	विमुख हो रहे थे। सब तरहसे असमर्थ देखकर अब				
सेवासे घबरा रहा हूँ। आप मेरे पुत्रका प्रणाम स्वीकार	उन्होंने मेरे चरण पकड़ लिये और कहा, बड़े लोग				
कर लीजिये। उसने आपको प्रणाम कहा है। तब आप	बच्चोंके अपराधोंपर ध्यान नहीं देते, मेरे अपराधको आप				
मेरी बात सुननेको तैयार नहीं थे। सन्देश किसीका भी	क्षमा कर दें और घर चलें।				
हो पहुँचा देना चाहिये। अब आप जाइये। भगवान्की	मैंने कहा—आपके घर चलकर क्या करूँगा? मैं				
कृपासे आपके पुत्रका पुनर्जन्म हुआ है। आप प्रसन्नतासे	पूर्ण गोव्रती हूँ। गव्य पदार्थींसे बना हुआ भोजन करता हूँ।				
पधारें। प्राचार्य भाषण देनेमें नम्बर एक थे। पर आज	पूजापाठ कर ही लिया है। प्राचार्यजीने कहा गाय तो हमारे				
उनका मुँह कुछ भी नहीं कह पा रहा था। शर्मसे झुका	घरपर भी है। आपने स्वयं रातको देखी तो थी। मैने कहा				
जा रहा था। उनका मेरे पास आकर प्रणाम करनेका	वह गाय नहीं, जर्सी है। गायरूपधारी जहरीला पशु!				
साहस नहीं हो पा रहा था। अब वे बच्चेको लेकर घरके	उसीके दूधसे ही तो कैंसर, सन्धिवात, मधुमेह, हृदयाघात				
लिये चल दिये।	आदि पूरे देशमें महामारीकी तरह फैल गये हैं।				
मैं शौचसे निवृत्त होकर लौटा तो किसानने	इतनेमें प्राचार्यजीने जेबमें हाथ डालते हुए कहा				
हाथोंकी शुद्धि करायी, फिर मैं दातून करने लगा। वृद्धने	तब मैं आपकी कुछ सेवा कर दूँ? यह सुनकर मेरे				
बाल्टीमें ताजा पानी निकाला। मैंने स्नान किया। पुन:	नेत्र लाल हो गये। मैंने कहा आपकी औकात देख				
सूखे वस्त्र पहनकर तिलक–स्वरूपकर सन्ध्या की। फिर	ली। आप जेबसे हाथ निकाल लें। मुझे पता है				
गीता और रामायणका पाठ करने लगा। इसी बीचमें	आपने भवानीपुरामें सागवानके नामपर आमका फर्नीचर				
वृद्धने गायका दूध ओंटा लिया था। मैंने पूजा-पाठ	खरीदकर पैसा खाया था। उसकी जाँचमें ही ईमानदार				
करके गायको प्रणामकर प्रदक्षिणा की। उसके गोमयकी	अधिकारीने आपका स्थानान्तरण कर दिया था। ब्राह्मणके				
मस्तकपर बिन्दी लगायी और कहा—मैया! मेरी तो	नाते अधिक दण्ड नहीं दिया। मुझे आपकी पापकी				
तीर्थयात्रा पूरी हो गयी। मुझे तो राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीका	कमाईमेंसे एक रुपया भी नहीं चाहिये। आपका ऐसा				
प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो गया। किसानने कहा—महाराज!	साहस कैसे हुआ?				
मैं आपकी बात समझा नहीं, मुझे खुलकर बतायें। मैंने	तब वृद्ध किसानने आकर मेरे चरण पकड़ लिये				
कहा—मेरी बातपर विश्वास करें, ये तुम्हारी गोमाता ही	और हाथ जोड़कर कहा—पण्डितजी! आप मेरे कहनेसे				
राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरी हैं और तुम उनके सच्चे पुजारी	इनके घर चले जाइये। बेचारे इनके आँखोंमें आँसू				
हो। तुम्हारा गोबरसे लिपा-पुता घर तीर्थ है। तुम्हारी	झलक आये हैं। आप तो विद्वान् हैं, छोटी-छोटी बातोंपर				
अतिथि-सेवा महायज्ञ है। तुम्हारे कल्याणमें कोई सन्देह	ध्यान न दें। अब प्राचार्यजी उठे और किसान बाबासे				

कहा—आप मुझे अपनी गायका दुध, दही, घी दे दें। जल लेकर तुरंत अपने घरपर देशी गाय रखनेका

भाग ९२

में उसीसे भोजन बनाकर पण्डितजीकी सेवा करूँगा। संकल्प ले लिया। तब मैं उनके घर गया, वहाँ गोव्रती प्रसाद पाया। प्राचार्यजीने हाथ जोडकर कहा-क्रोधके आवेशमें मैंने आपको जो कुछ उलटा-

सीधा कहा है, उसकी मैं क्षमा-याचना करता हूँ। मैं अब मैं प्रसन्न हूँ। महापुरुष अपने हृदयमें कोई बात

आपका आतिथ्य स्वीकार कर सकता हुँ, पर एक मेरी नहीं रखते। उनका क्रोध भी कल्याणकारक होता शर्त है, आप मानें तो। प्राचार्यजीने कहा—आपकी हर है। जब आप राजराजेश्वरीके दर्शनकर लौटकर आयेंगे

शर्त मैं स्वीकार करनेको तैयार हूँ, आप तो आज्ञा कीजिये तब मैं गायको आगे करके ही आपका स्वागत करूँगा। और हमारे ऊपर कृपा करके आतिथ्य स्वीकार कीजिये। में प्राचार्यका सत्कार स्वीकारकर पैदल ही राजराजेश्वरी मैंने कहा आप घरपर जर्सी नहीं गाय रखनेका सिद्धेश्वरीके दर्शनको निकल पड़ा; क्योंकि मेरा संकल्प

पैदलयात्रा करनेका ही था। भारतीय संस्कृतिकी मूल

कहा—मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। उन्होंने हाथमें आतिथेयी गोमाताकी जय!

```
प्रेरक-प्रसंग
                                — श्रमका फल-
```

संकल्प लें तो मैं आपके घर आ सकता हूँ। प्राचार्यजीने

अब्राहम लिंकनका बचपन अत्यन्त दु:खमय था. उन्होंने अत्यन्त साधारण और गरीब परिवारमें जन्म लिया था। कभी नाव चलाकर तो कभी लकड़ी काटकर वे जीविका चलाते थे। उन्हें महापुरुषोंका जीवन-

चरित पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था, पर अर्थाभावमें पुस्तक खरीदकर पढ़ना उनके लिये कठिन था। वे अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटनके जीवनसे बहुत प्रभावित थे। एक समय उन्हें पता चला

कि उनके पड़ोसीके पास जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित है; वे प्रसन्नतासे नाच उठे, पर मनमें भय था कि पड़ोसी पुस्तक देंगे या नहीं। पड़ोसीने पुस्तक दे दी। अब्राहमने शीघ्र ही लौटा देनेका वादा किया था।

लिंकन झोंपड़ीमें रहते थे; पुस्तक वर्षासे भीगकर खराब हो गयी। अब्राहमके मनमें बड़ा दु:ख हुआ, पर वे निराश नहीं हुए।

अब्राहम लिंकनने पुस्तक समाप्त नहीं की थी कि एक दिन अचानक बड़े जोरकी जलवृष्टि हुई। अब्राहम

'मुझसे एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है।' सोलह सालकी अवस्थावाले असहाय बालक अब्राहमकी

बातसे पड़ोसी आश्चर्यचिकत हो गये। वे बालककी सरलता और निष्कपटतासे बहुत प्रसन्न हुए।

अब्राहमने कहा कि मैं पुस्तक लौटा नहीं सकूँगा; क्योंकि वह जलवृष्टिसे भीगकर खराब हो गयी है

तो भी मैं आपको नयी पस्तक दुँगा।

'तुम नयी किस तरह दे सकोगे? घरपर एक पैसेका भी ठिकाना नहीं है और बात ऐसी करते हो?'

पड़ोसीने झिड़की दी। 'मुझे अपने श्रमपर विश्वास है। मैं आपके खेतमें मजदूरीकर पुस्तकके दूने दामका काम कर दूँगा।'

अब्राहम लिंकन आशान्वित थे। पड़ोसीको उनका प्रस्ताव ठीक लगा।

अब्राहम लिंकनने मजदूरीके द्वारा पुस्तकके दामकी भरपाई कर दी और जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी संख्या ९]

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

सिंहराशि दिनमें ६। ३ बजेसे, इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), एकादशीश्राद्ध।

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, शरद्ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

दिनांक

नक्षत्र

तिथि

एकादशी सायं ५ । १२ बजेतक | शुक्र | आश्लेषा 🕖 ६ । ३ बजेतक

प्रतिपदादिनमें ८। २४ बजेतक	बुध	रेवती रात्रिमें २।३२ बजेतक	२६ सित०	मेषराशि रात्रिमें २।३२ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें २।३२ बजे, द्वितीयाश्राद्ध।
द्वितीया '' ८। ३५ बजेतक	गुरु	अश्वनी 🗤 २ । ५७ बजेतक	२७ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। २४ बजेसे, तृतीयाश्राद्ध , हस्तका सूर्य रात्रिमें ३। १०
				बजे, मूल रात्रिमें २।५७ बजेतक।
तृतीया '' ८। १३ बजेतक	शुक्र	भरणी 🕖 २। ५४ बजेतक	२८ ,,	भद्रा दिनमें ८। १३ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय
				रात्रिमें ८।१० बजे, चतुर्थीश्राद्ध।
चतुर्थी प्रातः ७। २४ बजेतक	शनि	कृत्तिका "२।२४ बजेतक	२९ ,,	वृषराशि दिनमें ८। ४७ बजेसे, पंचमीश्राद्ध।
पंचमी " ६।८ बजेतक	रवि	रोहिणी 🗤 १। ३३ बजेतक	३० ,,	भद्रा रात्रिशेष ४।३० बजेसे, षष्ठीश्राद्ध।
सप्तमी रात्रिमें२। ३२ बजेतक	सोम	मृगशिरा " १२। २३ बजेतक	१ अक्टू०	भद्रा दिनमें ३। ३१ बजेतक, सप्तमीश्राद्ध।
अष्टमी " १२।२२ बजेतक	मंगल	आर्द्रा 🗤 १०। ५८ बजेतक	२ ,,	जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध, श्रीगाँधीजयन्ती।
नवमी " १०।२ बजेतक	बुध	पुनर्वसु 🥠 ९।२३ बजेतक	३ ,,	कर्कराशि दिनमें ३।४७ बजेसे, मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।
दशमी " ७।३८ बजेतक	गुरु	पुष्य 🕠 ७।४४ बजेतक	٧ ,,	भद्रा दिनमें ८।५० बजेसे रात्रिमें ७।३८ बजेतक, दशमीश्राद्ध, मूल

रात्रिमें ७। ४४ बजेसे।

मघा सायं ४। २९ बजेतक द्वादशी दिनमें २।५२ बजेतक | शनि | शनिप्रदोषव्रत, द्वादशीश्राद्ध, त्रयोदशीश्राद्ध, मूल समाप्त सायं ४। २९ बजे। ξ " पू०फा० दिनमें ३।४ बजेतक त्रयोदशी " १२।४३ बजेतक रवि भद्रा दिनमें १२।४३ बजेसे रात्रिमें ११।४४ बजेतक, चतुर्दशीश्राद्ध। 9 चतुर्दशी " १०।४७ बजेतक सोम उ०फा० " १।५४ बजेतक अमावस्याश्राद्ध, पितृविसर्जन। ረ ,, अमावस्या " ९। १० बजेतक मंगल हस्त " १।५ बजेतक तुलाराशि रात्रिमें १२।५० बजेसे, भौमवती अमावस्या, मातामहश्राद्ध। 9 ,,

4 ,,

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, अश्विन शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र दिनांक

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि प्रतिपदा प्रात: ७।५६ बजेतक चित्रा दिनमें १२।३६ बजेतक शारदीय नवरात्रारम्भ, महाराजा अग्रसेनजयन्ती। बुध १० अक्टू० चित्राका सूर्य दिनमें ३।४० बजेसे। गुरु स्वाती <equation-block> १२। ३३ बजेतक ११ " विशाखा 11 १।० बजेतक भद्रा रात्रिमें ६।५४ बजेसे, वृश्चिकराशि प्रात: ६।५३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

शुक्र १२ " अनुराधा 🗤 १। ५६ बजेतक शनि १३ " भद्रा प्रातः ६।५९ बजेतक, मूल दिनमें १।५६ बजेसे। धनुराशि दिनमें ३। २४ बजेसे। पंचमी 개 ७। ४४ बजेतक रवि ज्येष्ठा 🗤 ३।२४ बजेतक 28 " षष्ठी दिनमें ८।५४ बजेतक मूल सायं ५।१८ बजेतक। मूल सायं ५।१८ बजेतक सोम १५ " पू० षा० रात्रिमें ७। ३३ बजेतक भद्रा दिनमें १०। ३१ बजेसे रात्रिमें ११। २८ बजेतक, महानिशा पूजा, सप्तमी '' १०।३१ बजेतक मंगल १६ " **मकरराशि** रात्रिमें २।११ बजेसे।

द्वितीया '' ७।८ बजेतक तृतीया 꺄 ६। ४९ बजेतक चतुर्थी 😗 ६। ५९ बजेतक

अष्टमी 😗 १२। २७ बजेतक बुध उ०षा 🦙 १०।४ बजेतक श्रीदुर्गाष्ट्रमीव्रत, दुर्गानवमीव्रत। १७ "

नवमी 🔈 २ । ३२ बजेतक श्रवण 🕠 १२। ४२ बजेतक गुरु १८ "

विजयादशमी, भद्रा रात्रिशेष ५।३६ बजेसे, कुम्भराशि दिनमें १।५९ दशमी सायं ४।३९ बजेतक धनिष्ठा "३।१६ बजेतक शुक्र १९ "

बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १।५९ बजे। शनि शतभिषा रात्रिशेष ५ । ३५ बजेतक भद्रा रात्रिमें ६ ।३३ बजेतक, पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)। २० "

एकादशी रात्रिमें ६ ।३३ बजेतक

रवि पू०भा० अहोरात्र द्वादशी <table-cell-rows> ८। १० बजेतक २१ " मीनराशि रात्रिमें १।४ बजेसे। सोम पू०भा० प्रातः ७। ३५ बजेतक सोमप्रदोषव्रत। २२ "

त्रयोदशी*''* ९ । २१ बजेतक

चतुर्दशी " १० ।६ बजेतक मंगल उ०भा०दिनमें ९।७ बजेतक भद्रा रात्रिमें १०।६बजेसे। 73 "

भद्रा दिनमें १०।१२ बजेतक, मेषराशि दिनमें १०।११ बजेसे, शरत्पृणिमा, पूर्णिमा" १० ।१८ बजेतक बुध रेवती 🕠 १०। ११ बजेतक २४ "

महर्षिवाल्मीकि-जयन्ती, पंचक समाप्त दिनमें १०। ११ बजे।

िभाग ९२ साधनोपयोगी पत्र

थीं, 'अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्' इत्यादि पदोंसे भी

श्रीगोपांगनाओंकी महत्ता

प्रेमी हैं और व्रजदेवियोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हैं; अत: व्रजांगनाओं के चरित्रकी ऐसी कोई भी आलोचना, जो

(8)

उन्हें तुच्छ सिद्ध करती हो, या उनके महत्त्वको घटाती हो, आपके हृदयको व्यथा ही देती होगी। आपने

नारदभक्तिसूत्रका प्रमाण देकर जो यह बात सिद्ध की है कि गोपीजनोंको भगवान्के स्वरूपका पूर्णत: ज्ञान था, इसमें तिनक भी संदेह नहीं है। जो गोपियाँ भगवान्की

अन्तरंग शक्तियाँ थीं, जिनके मन-प्राण सदा भगवानुमें ही लगे रहते थे, वे उनके स्वरूप और महत्त्वको न जानती हों—यह कैसे सम्भव है। श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके २९ वें अध्यायमें

श्रीशुकदेवजीने जो यह कहा कि—'तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः। जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥' फिर राजा परीक्षित्ने जो शंका की

कि—'कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।' इत्यादि, तथा इस शंकाको स्वीकार करके जो शुकदेवजीने उत्तर दिया—'उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा

गतः। द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः॥' यह सब ठीक है। इस प्रसंगसे गोपीजनोंकी महत्तापर ही प्रकाश पड़ता है। श्रीधर स्वामीने जो अपनी व्याख्यामें लिखा है कि— 'जीवेष्वावृतं ब्रह्मत्वं कृष्णस्य तु

हृषीकेशत्वादनावृतमतो न तत्र बुद्ध्यपेक्षा।' अर्थात् जीवोंका चेतनभाव या चित्स्वरूपता आवृत है, अतः उसको समझनेके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है; परंतु

श्रीकृष्ण तो सबकी इन्द्रियोंके नियामक एवं अन्तर्यामी हैं, इसलिये उनका चिन्मय स्वरूप आवृत नहीं है। अत: उनके इस स्वरूपकी अनुभूतिके लिये या उनके चिन्तनसे होनेवाली मुक्तिकी सिद्धिके लिये ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है। इसके द्वारा श्रीकृष्णके अनावृत सच्चिदानन्दघनस्वरूपका

प्रतिपादनमात्र किया गया है। इसका भाव यह नहीं

समझना चाहिये कि गोपियोंकी उनके प्रति परमात्मबृद्धि

नहीं थी, या वे उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानती

इस धारणाकी पृष्टि हो जाती है। प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आप भगवानुके यह सब होनेपर भी भगवान्की स्वरूपभूत माया शक्ति या लीलाशक्ति उनके ज्ञानको तिरोहित तथा

> परमात्मा या ब्रह्म हैं, इस भावका स्मरण उन्हें नहीं रहता; वे यही अनुभव करती हैं - श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, प्राणवल्लभ हैं। आपको 'जारबुद्ध्यापि' यह कहना खटक सकता है। ब्रह्माजी भी जिनकी चरणरजकी

> प्रेमभावको ही प्राय: जाग्रत् किये रहती है। श्रीकृष्ण

वन्दना करते हैं तथा उद्भव-जैसे ज्ञानी भी जिनकी चरणरेणु होनेके लिये तरसते हैं, उन व्रजललनाओंकी भी

सच्चरित्रताका समर्थन करना पडे, उनके चरित्रपर भी सन्देहका अवसर आये—यह आपहीको नहीं, सभी भगवत्प्रेमियोंको व्यथा देता है। गोपियोंके प्रेमके साथ

शिशुपालके भगवत्स्मरणकी चर्चा भी आपको पसंद नहीं आयी। परंतु ऐसा होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता। शिशुपाल तो भगवान्का परम अन्तरंग पार्षद था, वह शापग्रस्त होनेके कारण भगवान्से पृथक् पड़ा था, उसने द्वेषभावसे भगवान्का निरन्तर स्मरण किया था;

अतः उसका महत्त्व कम नहीं मानना चाहिये। आपके यहाँके विद्वान् जो यह कहते हैं कि 'गोपियोंके मनमें काम ही था, प्रेम नहीं' उनका यह कथन श्रीगोपीजनोंके महत्त्वको न जाननेके कारण ही है। उनके इस कथनका विरोध तो श्रीमद्भागवतमें ही हो

जाता है। शास्त्रमें कहा है—'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्'—गोपियोंका प्रेम ही लोकमें कामके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गोपियाँ प्रेमकी प्रतिमूर्ति थीं। उनके मनमें लौकिक कामकी गन्ध भी नहीं थी। उनके लिये जो 'जारबुद्ध्यापि' इस पदका प्रयोग किया गया है,

यह भी उनकी महत्ताका ही परिचायक है। जब उनमें लौकिक काम नहीं, अंगसंगकी वासना नहीं, तब वहाँ लौकिक जारभाव या औपपत्यकी कल्पना कैसे की जा सकती है ?

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह

प्रश्न श्रीकृष्ण और गोपियोंके स्वरूपको भुलाकर ही किया

संख्या ९] साधनोपयोगी पत्र जाता हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमान—सबके एकमात्र गोपीजनोंकी महिमा अनिर्वचनीय है; आपके आग्रहसे पति श्रीकृष्ण ही हैं। गोपी-गोपियोंके पति, उनके सगे-उनकी कुछ चर्चा हुई-जिससे मन, वाणी और लेखनी सम्बन्धी तथा जगत्के सभी प्राणियोंके हृदयमें आत्मा एवं पवित्र हुईं। इसके लिये हम आपके कृतज्ञ हैं। शेष सब परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीहरिकी कुपा है। श्रीकृष्ण किसीके पराये नहीं हैं। वे सबके अपने हैं और (२) गोपीभावकी उपासना सब उनके हैं। श्रीकृष्ण सिच्चदानन्दघन, सर्वान्तर्यामी, प्रेमरसस्वरूप एवं लीलारसमय परमात्मा हैं; तथा गोपियाँ आपका कृपापत्र मिला था। उत्तरमें देर हुई, इसके उनको आह्लादिनी शक्तिरूपा आनन्दिचन्मय-रसप्रतिभाविता लिये क्षमा करें। आपको गोपीभावकी उपासना प्रिय है, स्वरूपभूता श्रीराधारानीकी ही अनेकानेक मूर्तियाँ हैं। अत: सो बडी ही अच्छी बात है। परंतु सावधान रहियेगा, श्रीकृष्ण उनके लिये जार या परकीय नहीं, तथा वे भी कहीं मनमें कामभावना, इन्द्रियसुखेच्छा न पैदा हो जाय। श्रीकृष्णकी परकीया नहीं। वास्तवमें तो उनमें स्वकीया-गोपीभाव 'सर्वसमर्पण' का भाव है। इसमें निज-सुखकी परकीयाका कोई भेद था ही नहीं। वे सब श्रीकृष्णकी इच्छाका सर्वथा त्याग है। गोपीभावमें न तो लहँगा, अभिन्न थीं और श्रीकृष्ण उनके अभिन्न थे। भगवान् स्वयं साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है, न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथकी ही। गोपीभावकी प्राप्तिके लिये ही आस्वाद्य, आस्वादक, लीलाधाम तथा विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें प्रकट होकर अपने स्वरूपभूत श्रीगोपीजनोंका ही अनुगमन करना होगा। ध्यान कीजिये— अनन्तानन्तरसका समास्वादन करते तथा कराते रहते हैं। श्रीकृष्ण मचल रहे हैं और माँ यशोदा उन्हें माखन देकर ऊपर बताया जा चुका है कि गोपियाँ या श्रीकृष्णके मना रही हैं। श्रीकृष्ण कुंजमें पधार रहे हैं, श्रीमती सम्बन्धमें जारभाव या परकीयत्वकी कल्पना असंगत है। राधिकाजी उनकी अगवानीकी तैयारीमें लगी हैं। गोपीभावमें ऐसी दशामें 'जारबुद्धि' अथवा 'औपपत्य' आदि खास बात है 'रसकी अनुभूति।' 'श्रीकृष्ण ही मेरे पदोंका क्या स्वारस्य है, यह विचारणीय प्रश्न है। इसके एकमात्र प्राणनाथ हैं। वे ही परम प्रियतम हैं। उनके विषयमें निवेदन यह है कि गोपियाँ परकीया नहीं थीं. सिवा मेरा और कुछ भी नहीं है।' इतना कह देनेमें ही पर उनमें परकीयाभाव था। इसी दृष्टिसे श्रीकृष्णके प्रति रस नहीं मिलता। रसके लिये रसभरा हृदय चाहिये। उनके मनमें जारभाव था, वास्तवमें श्रीकृष्ण उनके अपने वाणीसे बाह्य रसका भानमात्र होता है। एक पतिप्राणा थे। परकीया होने और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पत्नी प्रेमभरे हृदयसे पतिको जब 'प्राणनाथ' और पातालका अन्तर है। जार और जारभावमें भी यही अन्तर 'प्रियतम' कहती है, तब उसके हृदयमें यथार्थ ही यह है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं— भाव मूर्तिमान् रहता है। इसीसे उसे रसानुभूति होती है। इसीसे वह प्राणनाथके लिये अपने प्राणोंका उत्सर्ग (१) अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, (२) मिलनकी उत्कण्ठा और (३) दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। गोपियाँ करनेमें नहीं हिचकती या यों कहना चाहिये कि उसके श्रीकृष्णकी परकीया थीं, या श्रीकृष्णको जारभावसे प्राणोंपर असलमें पतिका ही अधिकार होता है। पतिको भजती थीं-इस कथनका इतना ही तात्पर्य है कि वे प्रियतम कहते समय उसके हृदयमें स्वाभाविक ही एक श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करतीं, उनसे मिलनेकी उनके गुदगुदी होती है, आनन्दकी रस-लहरी छलकती है, इसी मनमें निरन्तर उत्कण्ठा जाग्रत् रहती और वे श्रीकृष्णमें प्रकार भक्तका हृदय भगवान्को जब सचमुच अपना 'प्राणनाथ' और 'प्रियतम' मान लेता है, तभी वह दोष कभी नहीं देखती थीं। वे उनके प्रत्येक व्यवहारको गोपीभावकी प्राप्तिके योग्य होता है और ठीक पत्नीकी प्रेमकी ही दृष्टिसे देखा करती थीं। इसी भावको व्यक्त करनेके लिये 'जारबुद्धि' आदि पदोंका प्रयोग हुआ है। भाँति जब भगवान्को पतिरूपमें वरण कर लिया जाता हमें गोपियोंके इस अहैतुक प्रेमका, जो केवल श्रीकृष्णको है, तभी उन्हें 'प्रियतम' और 'प्राणनाथ' कहा जा सकता सुख पहुँचानेके लिये था, निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। है। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति श्रीरामायणके अखण्ड पाठका अमोघ फल शालामें स्थानान्तरणका प्रस्ताव रखा जानेवाला था। अत: मंत्र महामिन बिषय ब्याल के । मेटत कठिन कुअंक भाल के।।

शनिवारको ही मैं प्रात:काल छ: बजे संकल्प लेकर

मन्त्रोंमें वह अमोघ शक्ति होती है कि वे भाग्यमें श्रीरामायणके सम्पूर्ण अखण्ड पाठके लिये बैठ गया। लिखे दुर्भाग्यको भी पलट देते हैं। प्रस्तुत घटना इसी दूसरा दिन रविवार था। प्रात: लगभग ६.३० बजे

तथ्यकी पुष्टि करती है। बात उस समयकी है, जब मैं २३ वर्षका अनुभवहीन, अपरिपक्व नवयुवक था। मैट्रिककी

परीक्षा उत्तीर्ण करते ही मेरी नियुक्ति नगरपालिका पुस्तकालय

एवं वाचनालयमें लाइब्रेरियनके पदपर हो गयी। प्रारम्भिक एक वर्षमें ही मेरे कामका प्रभाव मेरे अधिकारियों, सहकर्मियों एवं जनतापर अच्छा पड़ा। अत: लगभग एक-डेढ़ वर्ष

बाद ही मेरे अनुरोधपर मुझे नगरपालिका पूर्व माध्यमिक विद्यालयमें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित कर दिया गया। यहाँ भी मेरे कार्यसे मेरे प्रधान अध्यापक.

सहशिक्षक एवं छात्र सभी प्रसन्न थे और मेरी गणना अच्छे अध्यापकोंमें की जाती थी। परंतु अचानक ही क्या कुछ ऐसा हुआ, जिसकी

मुझे जानकारी नहीं है, नगरपालिकाके उपाध्यक्ष, उनके पार्षद एवं अधिकारी मुझसे रुष्ट हो गये। अचानक ही समाचार मिला कि मुझे पदावनत करके प्राथमिक शालामें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित किये

जानेके लिये नगरपालिका महासभामें प्रस्ताव प्रस्तुत किया जानेवाला है! समाचार मिलते ही मैं व्यथित होनेके साथ ही हतबुद्धि रह गया। मुझे सूझ नहीं रहा

आती ही नहीं थी। अपने कामके प्रति ईमानदारी एवं निष्ठा ही मेरा स्वभाव था।

अन्तमें निराश-हताश होकर यह विचार आया कि अब तो प्रभुकी शरणमें जानेके सिवाय कोई चारा नहीं है।

वैसे मैं प्रतिदिन पूजा-उपासनाके उपरान्त श्रीरामायणका पाठ निष्ठापूर्वक किया करता था। अचानक न जाने किस प्रेरणासे यह निश्चय किया कि अपनी लज्जाके रक्षणके

लिये 'श्रीरामायण' का अखण्ड पाठ किया जाय। वह

था कि क्या किया जाय! खुशामद एवं चापलूसी तो मुझे

ये मन्त्र प्रसिद्ध हैं-

दीन दयाल बिरिद् संभारी। हरह नाथ मम संकट भारी॥ परंत् मेरे पक्षमें तो बिना सम्पुटके ही प्रभुका अमोघ अनुग्रह मिल गया था, तब सम्पुट लगाकर विधिवत्

पुरश्चरण करनेपर शीघ्र ही प्रभुका अनुग्रह मिलेगा और अभीष्टकी प्राप्ति होगी—इस ध्रुव सत्यमें भला क्या शनितारकार्डित शहरकि डहाएं समें में हि.श. रहाएं कि प्राप्त का कि MATOR WITH रि. (१) Avinash/Sha

पाठ समाप्त करनेके उपरान्त पूर्णाहुति हवन किया एवं

प्रसाद हाथमें लेकर बैठकके दरवाजेके बाहर खडा हुआ

ही था कि नगरपालिकाके लेखापाल (एकाउन्टेन्ट) मेरे

सामनेवाली सड़कसे बड़े मठकी ओर जाते दिखायी दिये। दरवाजेके समीप मुझे खड़ा देखकर उन्होंने पूछा

कि थवाईत कुछ मालूम है? फिर कुछ पल चुप

रहकर वे स्वयं बोले—हमारे बड़े बाबूको पदावनत कर

दिया गया है। समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। फिर उत्सुकतापूर्वक गिरे मनसे मैंने पूछा—और मेरे सम्बन्धमें

महासभाकी बैठकमें क्या हुआ? उन्होंने कहा कुछ तो नहीं। कोई बात ही नहीं हुई। यह सुनते ही मेरे चेहरेपर

प्रसन्नताकी रेखा दौड गयी। मन-ही-मन प्रभुकी इस

अहैतुकी कृपापर गदगद् होकर प्रभु-चरणोंमें सादर

प्रणाम किया। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह सब 'श्रीरामायण' के अखण्ड पाठका ही प्रतिफल था।

हो गया। मैंने कई बार सुना था कि श्रीरामायणका

सुन्दरकाण्ड मन्त्रस्वरूप है। लोग प्राय: इसका पुरश्चरण

करके शीघ्र ही अपने अभीष्ट फलकी प्राप्ति कर लेते

हैं। सम्पुटके द्वारा शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त करनेके लिये

भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

अब तो प्रभु-चरणोंमें मेरा विश्वास और भी दृढ़

पढो, समझो और करो संख्या ९] पढ़ो, समझो और करो (१) तैने तो सबई डॉक्टरोंकी दवाई करा ली। अब एक काम सन्तकी परदुःखकातरता और कर ले बेटा। शनीचरी मुहल्लेमें एक कुटियामें एक यह मेरी आँखों देखी सत्य घटना है। बात सन् बाबा रहते हैं। तनिक उन्हें बुलाके और दिखा ले। १९५४ ई० की है। मैं शिक्षकीय प्रशिक्षणहेत् नार्मल श्रीबाबूलालजीने मुझसे कहा—'सनातन! जाकर स्कुल सागरमें अध्ययनरत था। वहाँ मेरे एक अध्यापक देख लो कौन बाबाजी हैं। आ सकें तो लिवा लाओ।' थे, नाम था श्रीबाबूलाल खरे। परिश्रमी, ईमानदार एवं में दौड़ता-दौड़ता कुटियाका पता लगाकर उन सन्तके सेवाव्रती। परिवारमें उनकी पत्नी, दो बेटियाँ लीला और पास पहुँचा। उन्हें संक्षेपमें पूरी घटना सुनायी। बाबूलालजीके कृष्णा तथा एक बेटा था, जिसका नाम भगवती था। विषयमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वे साधु-सन्तोंको ढोंगी भगवतीकी आयु लगभग सात या आठ वर्षकी थी। मानते हैं, परंतु उनमें बेटेकी हालत सुनते ही वे सन्त परिवारकी गाड़ी अच्छे ढंगसे चल रही थी। श्रीबाबूलालजी करुणासे भर गये और लपकते हुए तुरंत मेरे साथ उस समय अपनी एम०ए० की परीक्षाकी तैयारीमें व्यस्त थे। श्रीबाबूलालजीके घर पहुँच गये। भगवतीके सिरपर हाथ अप्रैलका महीना। एक दिन अचानक भगवतीको फेरा। पेटको टटोला और उठकर खड़े हो गये। मुझसे बुखार आ गया। तीन-चार दिन निकल गये, किंतु बुखार कहा—चलो मेरे साथ। मैं उनके साथ पुन: उनकी उतरनेका नाम ही नहीं ले रहा था। इसी बीच भगवतीकी कृटियामें पहँचा। उन्होंने कोई जडी-बूटी मेरे हाथमें पेशाब रुक गयी। वह बार-बार पानीकी माँग करता। थमाते हुए कहा। इसे ले जाओ। थोडेसे दुधके साथ मिलाकर पीसकर उसे पिला दो। उसे पानी बिलकुल मत पानी पीता, किंतु उसे पेशाब बिलकुल ही नहीं हो रही थी। परिणामतः उसका पेट एकदम फूलकर फटने-सा पिलाना। जब भी पानी माँगे तो बर्फका एक टुकड़ा उसके लगा। वह बेहोश हो गया। मुँहमें डालते जाना। ईश्वर चाहेगा तो वह जल्दी ही ठीक स्थानीय शासकीय अस्पतालमें उसे भरती कर हो जायगा। सभी लोग उसके पास बैठकर ईश्वरका भजन दिया गया। हम तीन-चार साथी बारी-बारीसे उसकी करें। रोयें-गायें नहीं। चिन्ताकी कोई बात नहीं है। देखभाल करनेके लिये अस्पतालमें ही बने रहते। वहाँसे लौटकर मैंने दवा भगवतीकी माँको दी। सन्तने अस्पतालके डॉक्टरोंने उसके बचनेकी आशा छोड दी जो भी बातें कही थीं, उनकी जानकारी सभी लोगोंको दी। और हम लोगोंसे कहा कि इसे घर ले जाओ। भगवतीको तुरंत दवा पीसकर पिलायी गयी। पाँच मिनटके श्रीबाबूलालजीके साथ हम सब लोग उसे घर ले बाद ही उसको पेशाब होना शुरू हो गया। अनेक बार आये। बरामदेमें एक दरी बिछाकर लिटा दिया। वह अभी पेशाब हुई। एक घण्टेके भीतर ही उसका पेट पुरी तरह सामान्य हो गया। उसको होश भी आ गया। तीन-चार भी बेहोश था। अस्फुट शब्दोंमें बार-बार पानी माँगता था। पेशाब आना अभी भी बन्द था। उसकी अन्तिम साँस घण्टेके बाद वह उठकर बैठ गया। हम सभी लोग ईश्वरके चल रही थी। हम सभी लोग पूरी तरह निराश थे। इस चमत्कारपर आश्चर्यचिकत थे। जिसे बडे-बडे डॉक्टर बाबूलालजीकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपक रहे थे। ठीक नहीं कर सके थे, उसे उन सन्तकी दवा एवं उनके भगवतीकी माँ बेहाल होकर रो रही थी। सभी लोग निरुपाय आशीर्वादने कुछ ही घण्टोंमें स्वस्थ कर दिया। धन्य हैं वे थे। कब क्या हो जाय—इसका कोई ठिकाना नहीं था। सन्त और धन्य है उनकी परदु:खकातरता। इसी बीच वहाँ पड़ोसकी एक बुढ़िया आयी, उसकी श्रीबाबूलालजी अब दुनियाँमें नहीं हैं, किंतु भगवती उम्र लगभग पचहत्तर वर्ष थी। भगवतीके सिरपर हाथ आज भी स्वस्थ है। शासकीय नौकरीमें है। फेरते हुए उसने श्रीबाबूलालजीसे कहा—काय रे बाबूलाल, - सनातन कुमार वाजपेयी

आये थे, उस समय मैं दस वर्षका था। मैं तब कैदमें (२) मेरे बापने नमक खाया था था। पीछेसे पिताजीका देहान्त हो गया। माताजीका 'मोडसिंह नौजवान है। आजकल बहुत बुरा पेशा देहान्त पहले ही हो चुका था। सेठजी हजारीमलजीके करता है। हमीरमलके घरसे लोहेकी अलमारीमें रखे हुए यहाँ नौकरी करने तथा फोटो इनाम पानेकी बात पिताजी मुकदमेके कागजातकी अटैची चुराकर या जबरदस्ती बार-बार कृतज्ञताके साथ सुनाया करते थे। मुझे पता नहीं था कि सेठजीके कौन पुत्र हैं, कहाँ रहते हैं। मैं छीनकर ला देगा और पाँच हजार रुपये ले लेगा।' इस शर्तपर वह हमीरमलके घर रात्रिके समय पहुँचा। कमरेके कामकी खोजमें जहाँ-तहाँ गया, पर काम न मिलनेसे अन्दर घुसा। हमीरमल सोया हुआ था। मोडसिंहने आखिर पेटकी भूख मिटानेको चोरी, छोटी-मोटी डकैतीका आलमारी खोली, अटैची निकाली और उसे लेकर ज्यों ही पेशा करने लगा। अब आपके किसी शत्रुद्वारा भेजा हुआ

वह बाहर निकलने लगा कि हमीरमलकी आँखें खुल गयीं और उसने झपटकर अटैची पकड़ ली। मोडिसंहने जोर लगाया, पर हमीरमल भी नौजवान था। मोडिसंहने जेबसे तेज छूरा निकाला और ज्यों ही छूरा चलानेवाला था कि उसकी दृष्टि दीवालपर टँगे हमीरमलके पिता हजारीमलके छाया-चित्रपर पड़ी। सहसा छूरेवाला हाथ रुक गया और मोडिसंह बड़े गौरसे फोटोकी ओर आँखें गड़ाकर देखने लगा। कुछ ही क्षणों बाद उसने पूछा—'यह चित्र किसका है?' हमीरमलने कहा—'मेरे स्वर्गीय पिता श्रीहजारीमलजीका है।' मोडिसंहने कहा—'लो, अपनी अटैची, मैं जाता हूँ।' हमीरमलने पूछा—'क्यों आये थे, समें अटैची जिसकी नामें किसे जा को भी और अटैची

किसका है?' हमीरमलने कहा—'मेरे स्वर्गीय पिता श्रीहजारीमलजीका है।' मोडिसंहने कहा—'लो, अपनी अटैची, मैं जाता हूँ।' हमीरमलने पूछा—'क्यों आये थे, क्यों अटैची निकाली, क्यों लिये जा रहे थे और अटैची पकड़नेपर क्यों तुमने मुझे मारनेको छूरा निकाला था तथा अब क्यों बिना ही कुछ किये—कराये लौटे जा रहे हो?' मोडिसंहने कहा—'किसी मुकदमेमें मुझको मत घसीटना। मैं बता रहा हूँ। मैं ठाकुर स्योदानिसंहजीका लड़का हूँ। आठवीं जमाततक पढ़ा हूँ। मेरे पिताजीसे शत्रुता रखनेवाले एक राजपूत अफसरके द्वारा चोरीके झूठे मुकदमेमें मैं फँसा दिया गया था और मुझे एक वर्षकी कैदकी सजा मिली! मेरा कोई पिछले पापका भोग था। कैदखानेसे छूटकर आनेपर कहीं कोई नौकरी

अबतक हमारे घरमें टँगा है। पिताजी नौकरी छोडकर

पुत्र बतलाया। अब भला, मेरा छूरा कैसे चलता? जिसके बापने जिनके पिताश्री "के यहाँ सात वर्षों तक रहकर सेवा की, जिनका लगातार नमक खाया। उनपर मैं छूरा चलानेका महापाप कैसे करता? भगवान्ने फोटो दिखाकर मुझे इस महापापसे बचा लिया। यह उनकी बड़ी कृपा हुई। आप मेरी ओरसे अब निश्चिन्त रहिये। "अपके शत्रु हैं, उनसे सावधान रहना चाहिये। मुझे आजकी घटनाको लेकर किसी मुकदमे-मामलेमें गवाह आदि मत बनाइयेगा। इतना ही निवेदन है।' सेठ हमीरमल मोडसिंहकी नमकहलालीका यह

जीता-जागता आदर्श देखकर चिकत रह गया। हमीरमलने मोडसिंहको बड़े प्रेमसे बैठाया, जलपान कराया, तब

अटैची चुराने आया था। अटैची ले जाकर उन्हें दे देनेपर

वे मुझे पाँच हजार रुपये देंगे—यह तय हुआ था। मैं

अटैची निकालकर लौट रहा था। आपने जागकर अटैची

पकड ली। मैंने छुरा निकाला, मैं निश्चय ही छुरा मारकर

अटैची ले जाता, पर भगवान्की कृपासे मेरी नजर

फोटोपर चली गयी। मुझे पहचाना चेहरा मालूम हुआ।

पूछनेपर आपने सेठजीका फोटो और अपनेको उनका

भाग ९२

वर्षकी कैदकी सजा मिली! मेरा कोई पिछले पापका बिदा किया। (इस घटनामें नाम बदलकर लिखे गये हैं, भोग था। कैदखानेसे छूटकर आनेपर कहीं कोई नौकरी घटना पुरानी, पर सत्य है।)—सुमेरमल जैन नहीं मिली। मेरे पिताजीने सात वर्षतक इन सेठ (३) हजारीमलजीके यहाँ पहरेदारकी नौकरी की थी। तबीयत त्याग-प्रधान भारतीय संस्कृतिकी सजीव मूर्ति खराब होनेसे वे नौकरी छोड़कर घर चले आये थे। आते में साबरकांठाके एक गाँवमें घूम रहा था। सन्ध्याके समय सेठजीने तीन हजार रुपये इनामके दिये थे और समय एक बुढ़िया मेरे पास आयी। शरीरपर फटी साड़ी मेरे पिताजीके माँगनेपर अपना एक फोटो दिया था, जो लिपटी थी। चेहरेपर सिकन पड़ी थी। दरिद्रताकी

अवतार-सरीखी दीख पडती थीं वह बृढिया माई।

पढ़ो, समझो और करो संख्या ९] मुझे लगा, वह बहन मेरे पास कुछ माँगने आयी बहुत प्रसन्न होगा।' होगी। पर वह तो अपना सभी कुछ देने आयी थीं। मैंने रैबारीको बुलवाया और उससे पूछा—'तेरे उनकी बातोंसे मुझे यह पता लगा और मैं आश्चर्यचिकत पास घर है?' हो गया। 'नहीं है महाराज!' उसने कहा। गद्गद वाणीसे उन बहनने कहा—'महाराज! मैं 'तो बनाता क्यों नहीं?' गरीब आदमी, मैं क्या दूँ।' 'बनाऊँ तो सही, पर महाराज! कोई जमीन नहीं दो मिनट मैं कुछ नहीं बोला, वह भी नहीं बोलीं। देता।' मैं उनके सामने देखता रहा। 'ये बुढ़िया माई तुझे रहनेको घर दें तो तू ले बहनने फिर कहा—'आपको देनेलायक तो मेरे लेगा?' 'क्यों नहीं?' उसने बहुत ख़ुश होकर कहा। पास कुछ नहीं है। ये दस बकरियाँ हैं। इनमेंसे एक दुध देती बकरी दूँ तो आप ले लेंगे?' 'पर घरको जरा मरम्मत करवाना होगा।' मैंने कहा—'क्यों नहीं? हम तो बकरीका दान भी 'यह तो मैं करवा लूँगा बापजी।' स्वीकार करते हैं। पर मैं न तो यहाँ रहुँगा और न बकरी 'परंतु देख, एक शर्त है। ये बृढिया माई जबतक साथ ले जाऊँगा। अत: बकरी यहीं किसी योग्य जीती रहेंगी, तबतक तुझे इनकी सेवा करनी पड़ेगी।' आदमीको दे दुँगा। तुम बताओ, उसीको दे दुँ।' मैंने हँसते-हँसते कहा। कुछ देर विचार करके बुढ़िया माईने कहा-सेवा करनेकी बात सुनते ही पास बैठी हुई बुढ़िया 'महाराज! हमारे गाँवमें एक भंगीका लडका रहता है। माई तुरंत बोल उठीं—'नहीं, नहीं, महाराज! मैं सेवा अकेला है बेचारा, उसे दे दें तो ? ? करानेके लिये इसको घर नहीं दे रही हूँ। इसके पास मैंने उस भंगीके लडकेको बुलाया और उससे कहा— घर नहीं है और मेरे पास एक ज्यादा है, इसीसे दे रही 'ये माँजी तुझे एक बकरी देती हैं, तू उसे पालेगा न?' हूँ। मुझे इससे सेवा नहीं करवानी है। मेरी तो आपसे उसने खुशीसे स्वीकार किया। बकरी उसे दे दी इतनी विनती है कि इसे ऐसा कुछ लिख दीजिये कि मेरे मरनेके बाद इस घरको इससे कोई छीन न सके।' गयी। उसके आनन्दका पार नहीं था। दूसरे दिन भोजनके बाद मैं विश्राम कर रहा था बुढ़िया माईकी सच्ची दान-भावना और सरलताने कि वही बृढिया माई फिर आयीं, बोलीं—'महाराज! में मेरे हृदयपर गहरा असर किया। बृढिया माईके सामने मैंने अकेली हूँ, पर मेरे घर दो हैं। एकमें मैं रहती हूँ और दोनों हाथ जोडे। दूसरेमें बकरियोंको रखती हूँ। बकरी तो बाड़ेमें ही रह फिर तो नियमितरूपसे कागजात बनाकर रैबारीको सकती हैं, तो यह मेरा जो दूसरा घर है, इसे भी आप बुढ़िया माईका घर दान कर दिया गया। बुढ़ियाने रैंबारीके कपालपर कुंकुमका टीका करके उसका घरमें दानमें ले लें। कुछ देर तो मैं बुढ़ियाकी ओर ताकता ही रह गया। प्रवेश कराया। दूसरेके लिये त्यागकी इस वृत्तिको देखकर मुझे बड़ा मैंने गाँव छोड़ा, उस समय उन बुढ़िया माईका आनन्द मिला। फिर मैंने उनसे कहा—'मॉॅंजी! तुम्हारे झुर्रियाँ पड़ा हुआ चेहरा मेरी आँखोंके सामने तैर रहा गाँवमें कोई बिना घरका आदमी है?' था। मुझे ये बुढ़िया माई हजारों वर्ष पुरानी त्याग-प्रधान कुछ देर विचार करके बुढ़िया बोली—'हाँ भारतीय संस्कृतिकी सजीव मूर्ति दीख रही थीं। (अखण्ड महाराज! एक रैबारी है, आप यदि उसे दे देंगे तो वह आनन्द)—रविशंकर महाराज

मनन करने योग्य तर्पण और श्राद्ध आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णींके चार मूर्त—ये सात एक बार महाराज करन्धम महाकालका दर्शन करने गये। कालभीतिने जब करन्धमको देखा, तब उन्हें भगवान् प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मों के

शंकरका वचन स्मरण हो गया। उन्होंने उनका स्वागत-

सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादिके बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर उन्होंने महाकाल (कालभीति)-से पूछा—

'भगवन्! मेरे मनमें एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरोंको

जल दिया जाता है, वह तो जलमें ही मिल जाता है; फिर वह पितरोंको कैसे प्राप्त होता है ? यही बात श्राद्धके सम्बन्धमें

भी है ? पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितरलोग उन पिण्डादिका उपयोग करते हैं। साथ ही यह कहनेका साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरोंको किसी प्रकार मिलते ही नहीं; क्योंकि स्वप्नमें

देखा जाता है कि पितर मनुष्योंसे श्राद्ध आदिकी याचना करते हैं। देवताओं के चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अत: मेरा मन इस विषयमें मोहग्रस्त हो रहा है।' महाकालने कहा—'राजन्! देवता और पितरोंकी

योनि ही इस प्रकारकी है कि दूरसे कही हुई बात, दूरसे किया हुआ पूजन-सत्कार, दूरसे की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातोंको वे जान

लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पाँच तन्मात्रा, चार अन्त:करण)-का बना होता है, दसवाँ जीव होता है; इसलिये उन्हें स्थूल

उपभोगोंकी आवश्यकता नहीं होती।' करन्धमने कहा. 'यह बात तो तब मानी जाय, जब

लिये यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरकमें चले जाते हैं। दूसरी बात, जो शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको

पितर लोग यहाँ भूलोकमें हों, परंतु जिन मृतक पितरोंके

आयु, प्रजा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धनमें

अधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। इन नित्य पितरोंके अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ताके पितरोंको, वे चाहे कहीं भी हों, तृप्त करते हैं।'

करन्धमने कहा, 'महाराज! यह बात तो समझमें आ गयी; किंतु फिर भी एक सन्देह है-भूत-प्रेतादिके लिये जैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्र

ही संक्षेपसे देवतादिके लिये भी क्यों नहीं दी जाती? देवता, पितर, अग्नि—इनको अलग-अलग नाम लेकर देनेमें बडा झंझट तथा विस्तारसे कष्ट भी होता है।'

महाकालने कहा—'सभीके विभिन्न नियम हैं। घरके दरवाजेपर बैठनेवाले कुत्तेको जिस प्रकार खानेको दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्तिको भी दिया जाय? और क्या वह उस तरह दिये जानेपर

है, उसी प्रकार देनेपर देवता उसे नहीं ग्रहण करते। बिना श्रद्धांके दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते। श्रद्धापूर्वक पवित्र पदार्थ भी बिना मन्त्रके वे स्वीकार नहीं करते।' करन्धमने कहा—'मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो

स्वीकार करेगा ? अत: जिस प्रकार भूतादिको दिया जाता

दिया जाता है?' महाकालने कहा—'पहले भूमिपर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुरलोग बीचमें ही घुसकर ले लेते थे। देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते। आखिर उन्होंने ब्रह्माजीसे शिकायत की। ब्रह्माजीने कहा कि-पितरोंको दिये गये पदार्थींके साथ तिल, जल, कुश एवं जो

देवताओंको दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल)

दान दिया जाता है, वह कुश, तिल और अक्षतके साथ क्यों

जल, कुशका प्रयोग हो। ऐसा करनेपर असुर इन्हें न ले सकेंगे। इसीलिये यह परिपाटी है।' अन्तमें युगसम्बन्धी शंकाओंको भी दूरकर कृतकृत्य हो करन्धम लौट आये। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MAber स्प्राप्त एडेश्वर क्रिया के क्रिया के अपारिका क्रिया के अपारिका क्रिया करें

पड़कर नरकमें हैं, तब दूसरोंके लिये कुछ कैसे करेंगे!'

कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[२५ सितम्बरसे पितृपक्ष (महालय) आरम्भ हो रहा है।]

नित्यकर्म-पुजाप्रकाश [सजिल्द] (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर

स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन,

<mark>पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ७० गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी।</mark>

जीवच्छ्राद्ध-पद्धित (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है,

जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो

सके। मूल्य ₹ ७०

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश [ग्रन्थाकार] (कोड 1593)—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको <mark>आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन</mark>्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १४५

गरुडपराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका

विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मुल्य **₹**४०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष

<mark>महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी</mark>

<mark>प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मृल्य ₹३५</mark>

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928) — अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया

जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मुल्य ₹१६

महाभारत सटीकके अब सभी खण्ड उपलब्ध								
कोड खण्ड विवरण			मूल्य ₹	कोड		विवरण		मूल्य ₹
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—आदिपर्वसे		35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार	—द्रोणपर्वसे	

सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द। 3194

स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द। 3194 (सानवाद) ग्रन्थाकार—शान्तिपर्व, पञ्जम खण्ड 33 द्वितीय खण्ड (सानवाद) ग्रन्थाकार—वनपर्वसे सचित्र. सजिल्द। 304 विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द। ३७५

(सानुवाद) ग्रन्थाकार— षष्ठ खण्ड तृतीय खण्ड (सान्वाद) ग्रन्थाकार—उद्योगपर्वसे अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द। सचित्र. सजिल्द। 3194 मूल्य ₹ २२५०

728 महाभारत-सटीक (छ: खण्डोंका) साधन-सुधा-सिन्धु (कोड 465) ग्रन्थाकार—यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी <mark>श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वा</mark>रा प्रणीत लगभग ५० पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके

<mark>अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें</mark> अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्ये<mark>क देश. वेष. भाषा</mark> <mark>एवं सम्प्रदायके साधकोंके</mark> लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। पृष्ठ–संख्या १००८,

<mark>कपडेकी मजबृत जिल्द एवं सुन्दर रंगीन, लेमिनेटेड आवरणसहित। मुल्य ₹२००, **(कोड 1630) गुजराती और**</mark> <mark>(कोड 1473) ओडिआमें</mark> भी उपलब्ध। व्यवस्थापक—गीताप्रेस,गोरखप्र



प्र० ति० २०-८-२०१८ रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019 नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार ्रादश ज्योतिर्लिग द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग (कोड 2155) [पुस्तकाकार] —शिवभक्तोंके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इसमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र इतिहास, उनकी भौगोलिक स्थिति, सचित्र पौराणिक आख्यान, सांस्कृतिक विवरण, पर्वोत्सव, यातायात एवं ठहरनेके स्थान तथा लिङ्ग-रहस्य इत्यादिका विस्तृत विवेचन किया गया है। मुल्य ₹४० श्रीरामचरितमानस (कोड 2166) सजिल्द, मोटा टाइप, अर्थसहित, ग्रन्थाकार, <mark>सामान्य संस्करण—</mark>प्रस्तुत ग्रंथ जन–सामान्यको ध्यानमें रखते हुए लागत मूल्यसे बहुत कम मूल्यपर <mark>प्रकाशित किया गया है, जिससे अधिक-से-अधिक पाठक श्रीरामचरितमानसके पाठका लाभ उठा सकें।</mark> कुल पृष्ठ-संख्या ८४८, मुल्य ₹१५० नल-दमयन्ती (कोड 2150) असमिया—इस पुस्तकमें महाभारतके आधारपर परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत नल-दमयन्तीके चरित्रका मनोहर चित्रण किया गया है। मुल्य ₹ ६ <mark>ईशावास्योपनिषद् (कोड 1844) मराठी</mark>—उपनिषदोंमें ईशावास्योपनिषद्का सर्वप्रथम स्थान है। यह <mark>शुक्ल यजुःसंहिताके ज्ञानकाण्डका चालीसवाँ</mark> अध्याय है। सानुवाद, शाङ्करभाष्य। मूल्य **₹**१० <mark>श्रीगुरुचरित्र (कोड 2148) तेलुगु, [ग्रन्थाकार]</mark>—प्रस्तुत पुस्तक ओवी छन्दोबद्ध मराठी मूलका <mark>विधेयात्मक तेलुगु भाषाका भावानुवाद है। पहली बार तेलुगु भाषामें श्रीगुरुचरित्र सुन्दर, सुबोध, सरल एवं सरस</mark> <mark>भावानुवाद प्रकाशित हुआ है। आशा है, तेलुगु भाषाके जिज्ञासुओंके लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा। मुल्य ₹२००</mark> श्रीमद्भगवद्गीता (कोड 2162) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [पॉकेट साइज] — इसमें मूल श्लोक-सहित नेपाली भाषामें श्लोकार्थ तथा गीताजीकी महिमा एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिका सरस वर्णन किया गया है। <mark>आशा है, नेपाली भाषाके पाठकोंके</mark> लिये यह अत्यन्त उपयोगी होगा। मृल्य ₹ १८ सरल गीता (कोड 2163) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [पुस्तकाकार] — प्रस्तुत पुस्तकको गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये मूल श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी। प्रत्येक श्लोकके नीचे उसका नेपाली भाषामें अर्थ भी दिया गया है ताकि पाठकोंको श्लोकोंके पढ़ने <mark>और उसका भाव समझनेमें ज्यादा सरलता हो। मृल्य ₹</mark> ३५ गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित शीघ्र प्रकाश्य— मार्च, २०१८ तकके विभिन्न संस्करण श्रीभक्तमाल (कोड 2161) गुजराती, श्रीमद्भगवद्गीता १३६५ लाख ٧. ग्रन्थाकार— भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्य १०४९ लाख ٦. पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थ महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, २४७ लाख ₹. महिलाओं एवं बालकोपयोगी साहित्य १०८९ लाख विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक भक्तचरित्र एवं भजनमाला १५५३ लाख <mark>ढंगसे वर्णन हुआ है। (कोड 2066) हिन्दीमें भी</mark> अन्य प्रकाशन १३३७ लाख उपलब्ध। कुल-६६ करोड़ ४० लाख पुस्तकोंका आर्डर व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 के ही पतेपर भेजें।